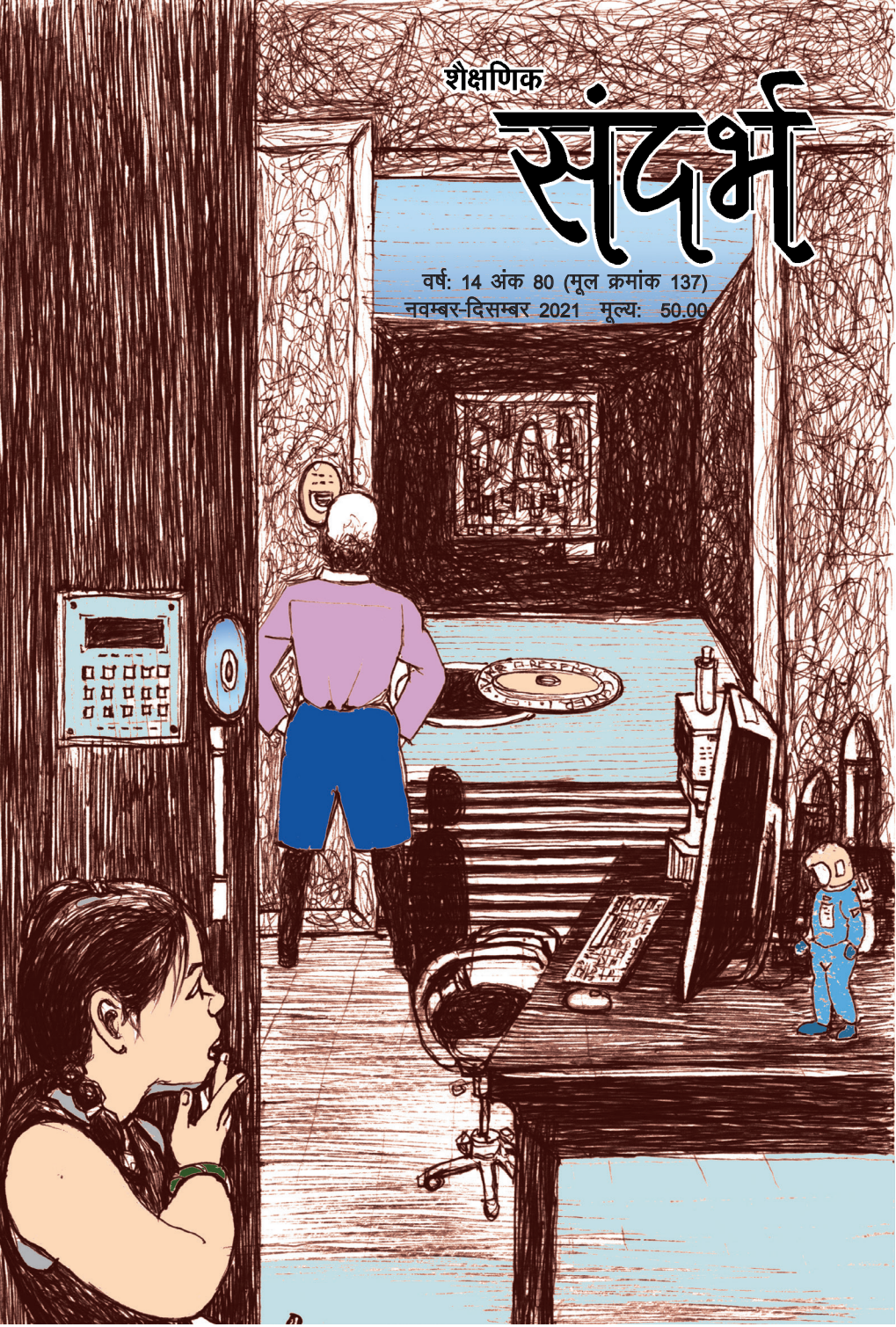


शैक्षणिक

# संदर्भ

वर्ष: 14 अंक 80 (मूल क्रमांक 137)  
नवम्बर-दिसम्बर 2021 मूल्य: 50.00





शैक्षणिक

# संदर्भ

सम्पादन  
राजेश खिंदरी  
माधव केलकर  
प्रबन्धकीय सह-सम्पादक  
पारुल सोनी

सहायक सम्पादक  
कोकिल चौधरी  
अतुल वाधवानी

सम्पादकीय सहयोग  
सुशील जोशी  
उमा सुधीर

आवरण  
राकेश खत्री

वितरण  
ज्ञानक राम साहू

सहयोग  
कमलेश यादव, अनमोल जैन

वर्ष: 14 अंक 80 (मूल क्रमांक 137)  
नवम्बर-दिसम्बर 2021

मूल्य: ₹ 50.00

एकलव्य फाउण्डेशन

जमनालाल बजाज परिसर  
जाटखेड़ी, भोपाल-462 026 (म.प्र.)  
फोन: +91 755 297 7770, 71, 72  
www.sandarbh.eklavya.in  
सम्पादन: sandarbh@eklavya.in  
वितरण: circulation@eklavya.in

अब *संदर्भ* आप तक पहुँचेगी रजिस्टर्ड पोस्ट से  
इसलिए सदस्यता शुल्क में वृद्धि की जा रही है।

सदस्यता शुल्क	एक साल (6 अंक)	तीन साल (18 अंक)	आजीवन
	450.00	1200.00	8000.00

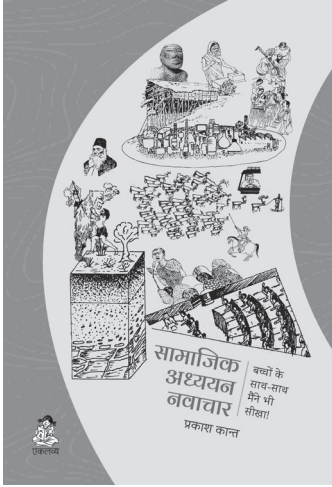
**मुखपृष्ठ:** मिनी का अपने भाई से छोटे होने का ख्वाब है। इसी उधेड़बुन में वह एक रहस्य से टकरा जाती है। वह अपने ख्वाब में सफल हो पाएगी या नहीं और उस रहस्य के बारे में कितना जान पाएगी, पढ़ते हैं इस वैज्ञानिक कल्पनाओं से पूर्ण कहानी के प्रथम भाग में, पृष्ठ 65 पर। चित्र: पूलता ब्लैकडॉट।

**पिछला आवरण:** 'द हॉर्स इन मोशन' की क्रमबद्ध शृंखला में घोड़ी को दौड़ते हुए देखा जा सकता है। इसे आँखों के सामने तेज़ी-से एक-के-बाद-एक गुज़ारने से घोड़ी के दौड़ने का आभास होता है। इस सिद्धान्त एवं अन्य कारणों के चलते हमें फिल्म या चलचित्र में सब चलते-फिरते दिखते हैं। इसे विस्तार पूर्वक समझते हैं सवालीराम के साथ पृष्ठ 79 पर।

**कवर 3:** समुद्र तट पर या किसी गड़ढे में पानी पर तेल की परत साफ दिखाई देती है। आखिर दो अलग-अलग द्रव कैसे एक-दूसरे के ऊपर आते हैं? घनत्व की अवधारणा को समझाने के लिए बच्चों के साथ सरल गतिविधियाँ की जा सकती हैं। आइए, इस लेख में पढ़ते-समझते हैं इन गतिविधियों के बारे में पृष्ठ 84 पर।

यह अंक त्रिवेणी एजुकेशनल ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है।

## एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम से परिचय कराती नई किताबें



होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम की तर्ज पर एकलव्य ने अस्सी के दशक में सामाजिक अध्ययन नवाचार कार्यक्रम की शुरुआत की। कार्यक्रम में सीखने-सिखाने के नए तौर-तरीकों के साथ ही किताबें भी नई थीं। इन नवाचारी किताबों को पढ़ने-पढ़ाने का एक शिक्षक का अनुभव...

सामाजिक अध्ययन नवाचार:

बच्चों के साथ मैंने भी सीखा

लेखक: प्रकाश कान्त

पेपरबैक, पेज - 192

मूल्य: 90/-

सामाजिक अध्ययन की नवाचारी किताबों की शुरुआत कुछ प्रायोगिक पाठों से हुई। फिर एक-एक कर किताबें बनीं, उनके प्रयोग से मिली सीखों से सुधार हुए। इस चुनौती भरे सफर की दास्ताँ...

### सामाजिक अध्ययन शिक्षण: एक प्रयोग

पेपरबैक, पेज - 64

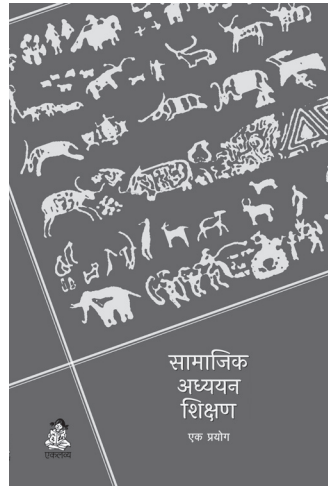
मूल्य: 65/-

ऑर्डर करने के लिए सम्पर्क करें

+91 755 297 7770-71-72

books@eklavya.in

www eklavya.in | www.pitarakart.in



## कुछ पिटे हुए अनुभव

न जाने कितने स्कूलों में शारीरिक दण्ड और अपमान एक नियमित मामले की तरह सामने आता है। बच्चे न केवल अपनी पीठ पर पाठ्यपुस्तकों और कॉपियों का भार ढोते हैं, बल्कि मूर्खतापूर्ण कारणों के लिए बेंत का खामियाज़ा भी भुगतते हैं, जैसे जूते का मेल नहीं खाना या फीता बँधा नहीं होना। बच्चा आसपास की घटनाओं को देखता है, सोचता है और उसकी नकल करता है या प्रतिक्रिया देता है। इन सबसे मनोवृत्ति परिवर्तन के अलावा मनोवैज्ञानिक नुकसान भी हो सकते हैं। बच्चे यह मानने लग सकते हैं कि हिंसा करना अच्छा है। या तो घर या स्कूल में, बच्चे को अनुशासनात्मक प्रथाओं के अनुसार ढाला जाता है। आज भी तमाम नियम-कानूनों के बावजूद भारत समेत कई देशों में अनुशासन के नाम पर पिटाई, स्कूली शिक्षा का अभिन्न हिस्सा है। प्रत्येक शिक्षक को लगता है कि उसे बच्चे को अनुशासित करने का पूरा अधिकार है। क्या इस हिंसा के पीछे सामाजिक या भावनात्मक कारण व ग्रन्थियाँ हैं? पढ़ते हैं लेखक के अपने और अपने दोस्तों के इन्हीं मुद्दों पर अनुभव जो आजीवन मस्तिष्क पर छाप छोड़े हुए हैं।

# 45

## साये में बैंकिंग

एक अच्छी तरह से काम करने वाली वित्तीय प्रणाली आधुनिक अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक है, और इसी क्रम में बैंक एक अहम भूमिका निभाते हैं। आम समझ के अनुसार, हम सभी जानते हैं कि अधिकांश बैंक जमा स्वीकार करने और उधार देने का काम करते हैं। वे बचतकर्ताओं के लिए धन के सुरक्षित भण्डार और उधारकर्ताओं के लिए वित्त के स्रोत के रूप में पेश आते हैं। इस तरह बैंकों का प्रमुख व्यवसाय बचतकर्ताओं और उधारकर्ताओं के बीच एक तालमेल बिटाने का होता है। पर क्या होता है जब यह तालमेल बिगड़ने लगता है, जब बैंक की विश्वसनीयता पर सन्देह के बीज अंकुरित होने लगते हैं? आइए, इस लेख के ज़रिए इन सभी अहम मुद्दों पर अपनी समझ को और पुख्ता बनाते हैं।

# 55



# शैक्षणिक संदर्भ

अंक-80 (मूल अंक-137), नवम्बर-दिसम्बर 2021

इस अंक में

- 05 | आश्रमशाला के आदिवासी बच्चों के साथ हाइड्रोपोनिक खेती प्रशान्त वाहुळे
- 16 | एक-सी और अलग-सी चीज़ें  
कालू राम शर्मा
- 27 | कोण को मापे कौन?
- 35 | सामाजिक बदलाव का माध्यम हैं कहानियाँ  
महेश झरबड़े
- 45 | कुछ पिटे हुए अनुभव  
सुशील जोशी
- 54 | दुनिया से खत्म हो जाएँगी 2500 भाषाएँ  
संध्या रायचौधरी
- 55 | साये में बैंकिंग  
पॉल क्रुगमैन
- 65 | लौट के बुद्धू घर को आए - भाग 1  
सतीश अग्निहोत्री
- 79 | फिल्म में ऐसा क्या होता है जो सब चलते-फिरते दिखते हैं?  
सवालीराम
- 84 | रंगीन द्रव पदार्थों की पहेली  
मेघा चौगुले और अदिती मुरलीधर

## आपने लिखा

संदर्भ का नवीनतम अंक-135 पढ़ा। एक लम्बे समय बाद बहुत मजेदार लगा। दरअसल, हम कोई किताब या पत्रिका में छपे लेख पढ़ते ही इसलिए हैं कि मज़ा आए और कुछ नई जानकारी मिले। अपने आसपास की दुनिया की, एक नए नज़रिए से। इन दोनों बातों में संदर्भ का यह ताज़ा अंक खरा उतरता है। संदर्भ की टीम इसके लिए साधुवाद की हकदार है।

इस अंक में 'चिचड़ी', 'पौधे-माहू-चींटी की अन्तर्क्रिया की खोजबीन', संकेत राउत का 'तितली ज़मीन पर' और के.आर. शर्मा का लेख 'फ्यूज़ बल्ब...' मुझे विशेष रूप से पसन्द आए। इनकी बात सिलसिलेवार करना चाहूँगा। चिचड़ी में जानकारी पूर्ण तो है पर इसमें रोचकता व रोमांच का अभाव है जो हमें कुत्ते और गाय की चमड़ी पर चिपकी चिचड़ी (मालवा में इसे गीचोड़ी कहते हैं) को देखकर होता है। पौधा, माहू और चींटी के अन्तर्सम्बन्ध पर केन्द्रित लेख अपने आसपास की दुनिया की बहुत गहराई से छानबीन करता नज़र आता है। और विद्यार्थियों को ऐसे अवलोकन करने के लिए प्रेरित करता है। यह और तितली वाला लेख जीव-जगत की अद्भुत विलक्षणता की एक झलक मात्र हैं। ऐसे कई आश्चर्य

बिखरे पड़े हैं हमारे आसपास। जीव विज्ञान के अध्ययन में इसी प्रकार की कई रोमांचक यात्राएँ करना अभी बाकी है - इब्बतदा ए इश्क है - की तरह - देखिए आगे-आगे होता है क्या।

'ज़मीन पर तितली' इसका एक और शानदार उदाहरण है जो यही इशारा करता है। लेखक ने इस विषय को कई नए आयाम दिए हैं। महज़ अवलोकन से परे जाकर, यह लेख सटीकता और गहराई से विमर्श को भलीभाँति प्रस्तुत करता है। उन्हें साधुवाद। शीर्षक बहुत ही रोमांचक है परन्तु अन्त में तितलियों को केवल मड-पडलिंग के विभिन्न स्रोतों के आधार पर कम आकर्षक मान लेना तो ठीक नहीं। इससे इनकी सुन्दरता कम नहीं होती। मड-पडलिंग एक आकर्षक, सुन्दर और रोमांचक नज़ारा होता है जहाँ ढेर सारी तितलियाँ आपको एक साथ नज़र आती हैं। कुछ ही महीनों पहले मैंने छिंदवाड़ा ज़िले की यात्रा के दौरान पानी-कीचड़ के पास हज़ारों तितलियाँ मड-पडलिंग करती देखीं - एक हैरतअंगेज़ नज़ारा होता है।

किशोर पंवार  
इन्दौर, म.प्र.



# आश्रमशाला के आदिवासी बच्चों के साथ हाइड्रोपोनिक खेती

प्रशान्त वाहुळे



बच्चे अपनी असल जिन्दगी के अनुभवों और अवलोकनों के साथ कक्षा में आते हैं। क्या इन अनुभवों और अवलोकनों का कक्षा के शिक्षण से कोई सम्बन्ध है? क्या बच्चे विज्ञान सीखने की प्रक्रिया की अगुआई कर सकते हैं? इस प्रक्रिया में शिक्षक की क्या भूमिका हो सकती है?

**अ**क्सर शिक्षा को लेकर इस दृष्टिकोण का हवाला दिया जाता है कि बच्चे खाली घड़े की तरह होते हैं, जिसे भरने की ज़रूरत है, या फिर गीली मिट्टी की तरह जिसे शिक्षक द्वारा आकार देने की ज़रूरत है। यह दृष्टिकोण इस धारणा पर आधारित है कि वैज्ञानिक ज्ञान

अपने आप में पूर्ण है, और इसे उसी रंग-रूप में शिक्षक द्वारा बच्चों तक पहुँचाना चाहिए। यह धारणा या तो बच्चों द्वारा कक्षा में लाए हुए रोज़मर्रा की जिन्दगी के ज्ञान को अनदेखा करती है, या उसे अवैज्ञानिक मानकर खारिज कर देती है। इससे बच्चों को अपने अनुभवों और अवधारणाओं, जो

### बॉक्स-1: हाइड्रोपोनिक्स क्या है?

हाइड्रोपोनिक्स खेती की एक ऐसी मिट्टी-रहित तकनीक है जिसमें बीजों के अंकुरण और उनसे पौधा बनने का माध्यम कोई पोषक तरल (जैसे पानी) होता है। ठीक उसी तरह जिस तरह सामान्यतः मिट्टी माध्यम बनती है। इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि खेती के अन्य तरीकों के मुकाबले, इस तरीके में कम पानी और कम जगह लगती है। इसका मतलब है कि किसान इसे हरा चारा उगाने के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं। इसी तरह, जिन घरों में सीमित जगह है, वे इस तकनीक का इस्तेमाल कर अपने घर में खुद के लिए जैविक सब्जियाँ उगा सकते हैं। यह तकनीक पौधों को मिट्टी वाले रोगजनकों से होने वाली बीमारियों से भी बचा सकती है।

उनकी पाठ्यचर्या का हिस्सा हैं, के बीच के सम्बन्ध को खोजने और उससे सीखने का मौका नहीं मिल पाता। लेकिन अगर हम बच्चों को ऐसे मौके दें, तो?

मैंने इस सम्भावना को महाराष्ट्र में, औरंगाबाद से 45 किलोमीटर दूर, तीसगाँव स्थित आश्रमशाला के मिडिल स्कूल के बच्चों के साथ ढूँढ़ने और समझने का प्रयास किया। इस आवासीय स्कूल के 90 किलोमीटर के दायरे में फैले दूर-दराज़ के इलाकों और विभिन्न आदिवासी समुदायों से बच्चे यहाँ आते हैं। चूँकि उनकी ज़िन्दगी और संस्कृति जंगलों से जुड़ी है, जहाँ उनका घर भी है, अक्सर इन बच्चों का आसपास की प्राकृतिक दुनिया से गहरा जुड़ाव होता है। यह जुड़ाव पौधों, मौसमी चक्र व लय और अन्न उगाने के विभिन्न सांस्कृतिक तरीकों से जुड़े उनके ज्ञान को काफी हद तक बढ़ाता है। मासिक बातचीत के दौरान, उन बच्चों के अनाज और खेती से

जुड़े ज्ञान को समझने के बाद, मैंने स्कूली पाठ्यचर्या के एक विषय – *पौधे उगने में मिट्टी की भूमिका* – को लेकर एक गतिविधि तैयार की।

आम तौर पर माना जाता है कि सभी बीजों को अंकुरित होने और बढ़ने के लिए मिट्टी की ज़रूरत होती है। लेकिन हाइड्रोपोनिक तकनीक पौधे को बिना मिट्टी के उगने में मदद करती है (बॉक्स-1)। क्या हम प्रायोगिक रूप में, खेती के इस तरीके से मिडिल स्कूल के बच्चों का परिचय करा सकते हैं? यह पौधों में वृद्धि की उनकी समझ और उनके खेती के पूर्व-अनुभवों से किस तरह जुड़ पाएगी?

### मिट्टी तैयार करना

मैंने कक्षा सातवीं और आठवीं के बच्चों को चर्चा के माध्यम से इस गतिविधि का परिचय दिया। साथ ही, उनके शिक्षकों को भी इस चर्चा में शामिल होने का आमंत्रण दिया।



चर्चा की शुरुआत इस प्रश्न से हुई, “क्या तुम्हारे खेत हैं?”

“हाँ, हैं!” बच्चों ने जवाब दिया।

“अच्छा, तो उनमें कौन-कौन-से जानवर खेती करने में मदद करते हैं?”

बच्चों ने गाय, बैल, भैंस, कुत्ता, बकरी, मुर्गी, बिल्ली आदि के नाम लिए।

मैंने पूछा, “इनमें से कौन-से जानवर दूध देते हैं? वे क्या खाते हैं?”

“हमें गायों, भैंसों और बकरियों से दूध मिलता है। वे हरी घास और सूखा चारा खाती हैं।” (सूखे चारे को मराठी में *कड़बा* या कुट्टी कहते हैं।)

“क्या हम हरी घास जानवरों को पूरे साल खिला सकते हैं?”

बच्चों ने कहा, “नहीं! हमें हरी घास सिर्फ बारिश और ठण्ड के मौसम में मिलती है। पूरे साल इन जानवरों को हरी घास खिलाना मुमकिन नहीं है।”

“तब तुम उन्हें गर्मी के मौसम में क्या खिलाते हो?”

“हम उन्हें, थोड़ा नमक मिलाकर, बारीक कटा हुआ सूखा चारा देते हैं।”

मैंने अगला प्रश्न पूछा, “गर्मी के मौसम में क्या होता है, जब सभी जगह सूखा पड़ता है?”

बच्चों ने अलग-अलग जवाब दिए-

• सूखा बहुत ही बुरा समय होता है।

• हमें पीने के पानी के लिए बहुत दूर तक चलना पड़ता है।

• जानवरों को पीने के लिए पानी नहीं मिलता।

• तालाब सूख जाते हैं, खेती रुक जाती है, गर्मी के पहले बोई हुई फसल को निकाल दिया जाता है, जानवरों को चारा नहीं मिलता, आदि।

मैंने पूछा, “क्या होगा अगर हम खेत के जानवरों को, खासकर दूध देने वाले जानवरों को, गर्मी के मौसम में भी हरी घास खिलाएँ?”

कुछ समय के लिए पूरी कक्षा में चुप्पी छा गई। मैंने सोचा कि शायद यह सवाल मैंने कुछ जल्दी पूछ लिया। थोड़ी देर बाद, बच्चे एक-दूसरे से बात करने लगे। इतने में पिछली बेंच से आवाज़ आई, “दूध देने वाले जानवर और मज़बूत बन जाएँगे, ज्यादा दूध देंगे और हमारी आमदनी भी बढ़ जाएगी।”

“अच्छा! और क्या हम अपने जानवरों के लिए साल के बारह महीने हरी घास उपलब्ध करवा सकते हैं?”

बच्चों ने कहा, “ये बिलकुल भी मुमकिन नहीं लगता! फसल को पानी की ज़रूरत होती है। हम गर्मी के मौसम में घास के लिए पर्याप्त पानी कहाँ से लाएँगे?”

“और क्या पौधे बिना मिट्टी के उग सकते हैं?”

बच्चे हँसने लगे। लेकिन कुछ मिनटों बाद, वे आपस में हैरानी-से इसकी सम्भावना पर चर्चा करने लगे। उनमें से कुछ, कोई सुराग पाने के लिए, मेरी तरफ देखने लगे। फिर एक लड़की ने कहा, “नहीं, बिना मिट्टी के हम कुछ भी नहीं उगा सकते।” कुछ और बच्चों ने इसका समर्थन किया।

मैंने कहा, “हाँ, हम बिना मिट्टी के कुछ उगा नहीं सकते, लेकिन क्या हम केवल पानी में कुछ उगा सकते हैं?”

फिर से, बच्चों ने कहा, “नहीं।”

“जब हम ज़मीन में बीज बोते हैं, तो वह उगता है। क्यों? मिट्टी के पास ऐसा क्या होता है जो उसे उगने में मदद करता है?”

जवाब मिला, “ज़मीन में खाद होती है, पानी होता है। मिट्टी में सूक्ष्मजीव होते हैं। मिट्टी में केंचुएँ रहते हैं और वे मिट्टी में पाई जाने वाली लकड़ी और पत्तियों को खाते हैं। उनके द्वारा उत्सर्जित अपशिष्ट पौधों को पोषण देता है।”

“लेकिन अगर हम बिना मिट्टी के पौधे उगा पाएँ तो? क्या तुम सभी कोशिश करना चाहोगे?”

हालाँकि, सभी बच्चों ने एक सुर में ‘हाँ’ कहा, लेकिन उनके चेहरे पर साफ दिख रहा था कि उन्हें यह बात नामुमकिन लग रही थी।

## अंकुरों का फूटना

हमने गतिविधि की शुरुआत एक किलोग्राम गेहूँ से की क्योंकि स्कूल भण्डारगृह में उस समय सिर्फ गेहूँ ही उपलब्ध था। हमने गेहूँ के दानों को पानी की कटोरी में भिगोया।

जब मैंने देखा कि बच्चे सतह पर तैर रहे दानों को निकाल रहे थे, तो मैंने पूछा, “तुम सभी ने उन दानों को बाहर क्यों निकाला?”

अपने दोस्तों से थोड़ी-सी चर्चा करने के बाद, एक बच्चे ने कहा, “ये बोन के बाद उगेंगे नहीं।”

“क्यों?”

“क्योंकि ये खराब हैं।”

एक अन्य बच्चे ने कहा, “उन्हें कीड़े लग गए हैं इसलिए हमने इन्हें निकाल दिया।”

हमने भीगे हुए गेहूँ के दानों को चार ट्रे में बिछाया, जिनमें हवा के आने-जाने के लिए छेद थे। हर ट्रे में दानों की परत एक सेंटीमीटर की रखी। ऐसा इसलिए किया ताकि सभी दानों को एक समान हवा, पानी और धूप मिल पाए। अगर दानों की परत इससे अधिक मोटी होगी, तो नीचे के दानों को धूप नहीं मिल पाएगी और इस कारण उनमें फफूँद लग जाने से दाने खराब हो सकते हैं। बाद में, जब बीज अंकुरित हो जाते हैं, यह छेद जड़ों को फैलने के लिए भी जगह देते हैं (चित्र-1)। इसके बाद ट्रे को





*चित्र-1: अंकुरित दानों को उगने की जगह देने और हवा प्रवाह के लिए छिद्रित ट्रे का इस्तेमाल।*

किसी कपड़े से ढँकने की ज़रूरत थी। इसके लिए एक लड़की अपना पुराना सफेद दुपट्टा ले आई और ट्रे को अच्छे से ढँक दिया।

मैंने पूछा, “तुम सभी को क्या लगता है कि ट्रे को कपड़े से क्यों ढँका गया है?”

बच्चों ने कई तर्क दिए –

- हवा और सूरज की रोशनी को अन्दर जाने से रोकने के लिए।
- गीले गेहूँ में जो पानी मौजूद है, उसे वाष्पीकृत होने से बचाने के लिए।
- चूहों को अन्दर घुसने से रोकने के लिए।
- नमी बनाए रखने के लिए। (बॉक्स-2)

### **बॉक्स-2: हम अनाज को कपड़े से क्यों ढँकते हैं?**

बच्चों द्वारा दिया गया जवाब सिर्फ एक हद तक सही है। अनाज को ढँकने के लिए कपड़े का इस्तेमाल इसलिए किया जाता है ताकि हवा का प्रवाह बना रहे। यदि हम कार्डबोर्ड या प्लास्टिक शीट से बीजों को ढँकेंगे तो इससे हवा का आना-जाना बाधित होगा। वहीं, ट्रे को कपड़े से ढँकने से इसे चूहों से नहीं बचाया जा सकता, लेकिन इससे नमी ज़्यादा समय तक बनाए रखने में मदद मिलेगी।

मैंने आगे पूछा, “अब जब हमने दानों को भिगो लिया है, तुम्हें क्या लगता है कि आगे क्या होगा?”

“ये दाने सुबह तक कपड़े से ढँकी ट्रे में नमी के कारण अंकुरित हो जाएँगे।”

“तुम्हें यह कैसे पता जबकि हाइड्रोपोनिक खेती का यह तुम्हारा पहला अनुभव है?”

उनमें से एक ने कहा, “हम मटकी उसल (अंकुरित साबुत मूँग) खाते हैं। और उसल बनाने से पहले उसे गीले कपड़े में रखते हैं।”

बाकी बच्चे भी उससे सहमत थे, और ऐसा लगा कि मेरा आधा काम हो गया। इसके बाद, बच्चों ने गोहूँ के अनाज को लेकर अन्य चार ट्रे तैयार कीं। ट्रे को अँधेरी जगह में रखा गया ताकि बीज, सूरज की रोशनी के कारण, सूख न जाएँ।

फिर बच्चों ने यही गतिविधि मेथी और धनिया के बीजों के साथ की। लेकिन इस बार हमने छिद्रित कटोरियों में एक कागज़ बिछाकर बीजों को फैलाया और भिगोया ताकि बीज इन छेदों से न गिरें। कुछ बच्चों ने एक छोटे स्प्रे-पम्प से, बीस दिनों तक दिन में दो बार, इन कटोरियों में पानी देने की ज़िम्मेदारी उठाई। घुलित ऑक्सीजन युक्त पानी की महीन बूँदें पहुँचाने के लिए पम्प सबसे सस्ता साधन है। इनके इस्तेमाल से बढ़ते पौधों की जड़ों तक अच्छी तरह हवा पहुँचाने में भी मदद मिलती है।

## फसल तैयार होना

अब ज़रूरत थी धीरज और नियमित अवलोकन की। चूँकि बच्चे आश्रमशाला में ही रहते थे, तो वे काफी दिलचस्पी से, कक्षा के पहले,



**चित्र-2:** बच्चों ने हाइड्रोपोनिक तकनीक से उगाए गोहूँ को फफूँद लगने से रोकने के लिए धूप में रखा।



दौरान और बाद में, ट्रे और कटोरियों का अवलोकन किया करते थे। वे रोज़ अपने विज्ञान के शिक्षक को अपनी गतिविधियों और अवलोकनों की रिपोर्ट देते थे। जब भी मुमकिन होता, वे मुझे फोन कर अपने अवलोकन बताते। तीन-चार दिनों में बीज अंकुरित हो गए, और पौधे बढ़ने लगे। हालाँकि, मैं स्कूल का दौरा नहीं कर पाया लेकिन बच्चे मुझे पूरी प्रगति और स्थिति बताते रहे, और जब भी कोई समस्या आई तो उन्होंने सलाह भी ली। नौवें दिन, बच्चों ने मुझे बताया की ट्रे में कुछ फफूँद लगने लगी थी।

सीधा हल सुझाने की बजाय, मैंने बच्चों से पूछा, “फफूँद किस कारण लगी होगी?”

एक लड़का बोला, “सर, यहाँ दो दिन से बहुत बादल छाए हैं, और ट्रे अन्दर से बहुत गरम हो जाती है इसलिए गेहूँ में फफूँद लग गई होगी।”

कुछ बच्चे दुखी हो गए। उन्हें लगा कि उनकी सारी मेहनत पर पानी फिर गया। लेकिन अगले दिन, उनके एक शिक्षक ने मुझे कुछ तस्वीरें भेजीं जिनमें बच्चों ने सभी ट्रे बाहर धूप में रखी थीं (चित्र-2)। इससे फफूँद लगना कम हो गया था। न मैंने, और न ही अन्य शिक्षकों ने बच्चों को ऐसा करने को कहा था; उन्होंने यह खुद ही किया। मुझे यह जानने का मौका नहीं मिल पाया कि बच्चों ने ट्रे धूप में

क्यों रखी थीं। यह समझ उनमें कहाँ से आई? शायद अपने माता-पिता को घर और खेत में काम करते हुए देखकर आई होगी।

जब मेरी एक सहकर्मी शीतल ने आश्रमशाला का दौरा किया, तो बच्चों ने अपने अनुभव उसके साथ साझा किए। शीतल ने मुझे गेहूँ, मेथी और धनिया के पौधों की तस्वीरें भेजीं। तस्वीरों को देखकर मुझे लगा कि इतनी मेथी तो उग गई थी कि दो लोगों के लिए कढ़ी बनाई जा सके।

इस गतिविधि के माध्यम से बच्चों ने नमी, फफूँद, जगह बनाने की योजना, पानी की व्यवस्था, समय की नियमितता, व्यवस्थित अवलोकन आदि की समझ विकसित की। इस दौरान, उन्हें कीटनाशक-रहित पौधे भी मिल सके। यह प्रयास सिर्फ इस एहसास तक सीमित नहीं था कि ‘बच्चे खेती कर सकते हैं’। इससे कई प्रश्न भी बच्चों के मन में उपजे जिन्हें उन्होंने अपने शिक्षक के साथ साझा किया। उदाहरण के लिए -

- हम अन्य कौन-सी फसल इस तकनीक से उगा सकते हैं?
- हम फसलों पर फफूँद लगने को कैसे रोक सकते हैं?
- पौधों की वृद्धि के लिए खाद ज़रूरी है। हम इसे हाइड्रोपोनिक खेती के ज़रिए बढ़े पौधों को कैसे दे सकते हैं?

मैंने शिक्षक के साथ फोन पर इन

### बॉक्स-3: हाइड्रोपोनिक खेती में पोषक तत्व

आम तौर पर, हाइड्रोपोनिक विधि से चारा उगाने के लिए नल का सामान्य पानी पर्याप्त होता है। लेकिन मानव खपत के लिए हाइड्रोपोनिक विधि से फसल उगाने में, पानी में सहायक पोषक तत्वों (मुख्यतः नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटेशियम) द्वारा अतिरिक्त खनिजीकरण करने की ज़रूरत पड़ सकती है। ये पोषक तत्व विभिन्न स्रोतों जैसे खाद, रासायनिक उर्वरक और कृत्रिम पोषक विलयन से मिल सकते हैं। हाइड्रोपोनिक्स में पोषक तत्वों के प्रबन्धन के बारे में और जानने के लिए, इस लिंक या QR कोड का इस्तेमाल करें:

<https://www.youtube.com/watch?v=6S6n3E3F4z0>



सवालों पर बातचीत की (बॉक्स-3)। किसी एक चर्चा के दौरान, एक शिक्षक ने बताया कि इस तरह की गतिविधियों द्वारा हम बच्चों को बीज, पत्तियाँ और जड़ सम्बन्धी पाठ्यक्रम की अवधारणाएँ आसानी-से सिखा सकते हैं। विद्यार्थियों ने अपने हाइड्रोपोनिक खेती के अनुभव को विज्ञान प्रदर्शनी में साझा करने की इच्छा जताई। दो विद्यार्थियों को इसकी प्रस्तुति के लिए चुना गया। हालाँकि, वे इस नए अनुभव से, शुरुआत में, थोड़े सहमे हुए लग रहे थे, पर फिर दोनों विद्यार्थियों ने गज़ब का आत्मविश्वास दिखाया – न केवल अपने समूह के प्रयास के बारे में बात रख पाने में, बल्कि जज और अन्य प्रतिभागियों के प्रश्नों के जवाब देने में

भी (चित्र-3)। मुझे लगता है, यह आत्मविश्वास, जो कभी-कभी ही देखने को मिलता है, इस अनुभव के दौरान किए गए प्रयास, बारीक अवलोकन और गहरी दिलचस्पी से आ पाया।

### हाइड्रोपोनिक खेती का स्वाद

आश्रमशाला में हाइड्रोपोनिक खेती के इस संक्षिप्त अनुभव ने मुझे ऐसे विषयों को सिखाने और गतिविधियाँ तैयार करने के लिए प्रेरित किया जिनसे बच्चों को अपनी असल दुनिया के अनुभवों को व्यक्त करने और उन्हें कक्षा में साझा की गई अवधारणाओं और गतिविधियों से जोड़कर समझने के मौके मिलें। उदाहरण के लिए, हाइड्रोपोनिक



**चित्र-3:** दो बच्चों ने विज्ञान प्रदर्शनी में हाइड्रोपोनिक खेती पर अपने प्रयोग और अनुभव की प्रस्तुति दी।

खेती विद्यार्थियों के लिए एक ऐसी मिसाल और माध्यम रही जिससे बच्चे बीजों का अंकुरण, पौधे उगाने में मिट्टी, जड़ों और पानी की भूमिका आदि के बीच सम्बन्ध बना पाए।

इससे उन्हें एक-दूसरे के भोजन और खेती सम्बन्धित सन्दर्भों और अनुभवों से, सक्रिय सहयोग कर, सीखने का मौका मिला।

### प्रमुख बातें

- बच्चे अपने सन्दर्भ और जीवन अनुभवों से मिले ज्ञान को कक्षा में लाते हैं।
- ऐसी गतिविधियाँ जो बच्चों के पूर्वज्ञान को कक्षा में जगह देती हैं, वे असल दुनिया के अनुभवों का विज्ञान कक्षा की अवधारणाओं के साथ एक मज़बूत सम्बन्ध बिठाने और समझ बनाने में बच्चों की मदद करती हैं।
- बच्चों द्वारा जाँच-पड़ताल करने, चर्चा करने और साझेदारी से काम करने जैसी प्रक्रियाओं को प्रोत्साहित करने से बच्चे आत्मविश्वासी विद्यार्थियों के रूप में विकसित होते हैं।

## पौधों को बिना मिट्टी के उगाना

### आपको चाहिए :

- प्लास्टिक ट्रे या छिद्रित प्लास्टिक कटोरियाँ (हल्की और बहुत सारे छेदों के साथ, जिससे बीजों को हवा और जगह मिल सके ताकि उनकी जड़ों को बढ़ने का मौका मिले)
- बाल्टी, मग, प्लास्टिक स्प्रे-पम्प, कपड़ा (हो सके तो सूती)
- कुछ बीज जो आसानी-से मिल जाएँ जैसे गेहूँ, धनिया, मेथी आदि
- पानी, किताब और पेन/पेन्सिल



प्लास्टिक ट्रे या छिद्रित प्लास्टिक कटोरियाँ



बाल्टी



मग



प्लास्टिक स्प्रे-पम्प



कपड़ा



गेहूँ, धनिया, मेथी के बीज



पानी



किताब



पेन/पेन्सिल

### क्या करना है :

- बीजों को 2 घण्टे या रातभर भिगोने को रख दें।
- भिगोए बीजों को, ट्रे या कटोरी में, 1 सेंटीमीटर मोटी परत में फैलाकर रख दें।
- ट्रे या कटोरी को कपड़े से ढँककर छाया में रख दें।
- 20 दिनों तक, दिन में दो बार स्प्रे पम्प से पानी डालकर, बीजों में नमी बनाए रखें।
- बीजों में जो बदलाव आ रहा है, उसका अवलोकन करें।
- अपने अवलोकनों को दी हुई तालिका में दर्ज करें।



## चर्चा करें :

- बीजों को अंकुरित होने के लिए कितना समय लगता है?
- क्या अलग-अलग बीजों के रूप-आकार और उगने की गति में फर्क है?
- जड़ों को बाहर निकलने में कितना समय लगता है?
- ये पौधे कितने समय तक जीवित रहते हैं?
- हाइड्रोपोनिक तकनीक से उपजे पौधे सामान्य मिट्टी में उपजे पौधों से किन-किन बातों में अलग होते हैं?

दिन	गेहूँ के दाने	धानिया के दाने	मेथी के दाने
दिन 1			
दिन 2			
दिन 3			
दिन 4			
.....			
दिन 14			

**प्रशान्त वाहुळे:** एकलव्य फाउण्डेशन, औरंगाबाद में रिसर्च एसोसिएट के तौर पर काम कर रहे हैं। प्राथमिक और मिडिल स्कूल शिक्षा से जुड़े विषयों में उनकी रुचि है। वे खेती में भी काफी दिलचस्पी रखते हैं। लेख और कविताओं के ज़रिए सामाजिक मुद्दों पर अपने अनुभव साझा करते रहते हैं।

**सभी चित्र: प्रशान्त वाहुळे।**

**अँग्रेज़ी से अनुवाद: संदीप दुबे:** एक शोधकर्ता हैं, और उन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा प्रणाली पर काम किया है। उन्हें सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं से जुड़े लेखों का अनुवाद और सम्पादन करना पसन्द है।

**आभार:** नितिका मीणा और पूजा मूळे द्वारा इस लेख के अँग्रेज़ी संस्करण पर मिली सम्पादकीय मदद के लिए लेखक उनका शुक्रिया अदा करते हैं।

यह लेख *आई-वण्डर* पत्रिका के अंक-जून 2021 से साभार।

चित्र: कैरान हैजाक



## एक-सी और अलग-सी चीजें

कालू राम शर्मा

बीती रात से जमकर हो रही बरसात थमती दिख रही थी। स्कूल कैम्पस में काफी कीचड़ मच गया था। कीचड़ इस कदर का कि काली मिट्टी बच्चों और शिक्षकों के जूतों-चप्पलों में लग-लगकर कक्षा के बरामदे तक पहुँच गई थी। कक्षा के फर्श पर, छत से बरसात के पानी की बूँदें टपकने की वजह से, गोल-गोल गड्ढे बन चुके थे। दीवारों के सहारे-सहारे पानी आधी दीवार तक रिसकर आ चुका था। बच्चों के चेहरों पर खुशी झलक रही थी। खिड़की के बाहर का दृश्य काफी सुहाना था। ज़मीन हरियाली की चादर से ढक गई और आसमान धूसर रंग के बादलों से अटा पड़ा था।

पहला पीरियड खत्म हुआ और दूसरे पीरियड की घण्टी लग चुकी थी। बच्चे मास्साब के आने का इन्तज़ार कर रहे थे।

मास्साब रजिस्टर में लिखा-पढ़ी कर रहे थे। प्रधानाध्यापक बरामदे से लौटकर अपने कमरे में घुसे और मास्साब को टोका, “अरे, आप यहाँ क्या बैठे हो...! आपकी छठी की क्लास आग मूत रही है...! पहुँचकर धुलाई क्यों नहीं करते...!”

मास्साब ने जब यह सुना तो उनका मूड खराब हो गया। वे रजिस्टर को टेबल पर पटककर कक्षा की ओर चल दिए। वे मन-ही-मन सोच रहे थे, “क्या जवाब दूँ अब इनको...। पहले पीरियड से तो यहाँ कागज़ी काम करने को बिठाकर रखा है...।”

कक्षा की ओर जाते हुए मास्साब के गुस्से का पारा बढ़ता जा रहा था। वे गुस्से में इतना ही सोच पाए, “अगर ज़्यादा धमाल करते पाए गए तो आज तो एक-दो बच्चों पर हाथ साफ कर दूँगा।”

बच्चों को मास्साब के कक्षा में आने की खबर नहीं थी। कुछ आपस में बातें कर रहे थे और कुछ कंचे खेल रहे थे।

प्रधानाध्यापक की जली-कटी बातों को मास्साब भुला नहीं पा रहे थे। झुँझलाहट और झल्लाहट से लबरेज़ मास्साब ने एक नज़र बच्चों पर डाली। “क्या लगा रखा है ये सब! चुप रहने का नाम ही नहीं लेते। बन्द करो ये बकबक!”

बच्चे मास्साब के गुस्से को पढ़ नहीं पाए। सभी एक साथ बोले, “बाल विज्ञान पढ़ाओ!”

मास्साब का गुस्सा सातवें आसमान पर पहुँच गया। “मुझे क्या करना है, ये अब तुम बताओगे! तुम लोग क्या मुझे बेवकूफ समझते हो...”

इस पर कुछ बच्चों ने ‘यस मास्साब’ कहा और कुछ ने ‘नो मास्साब’।

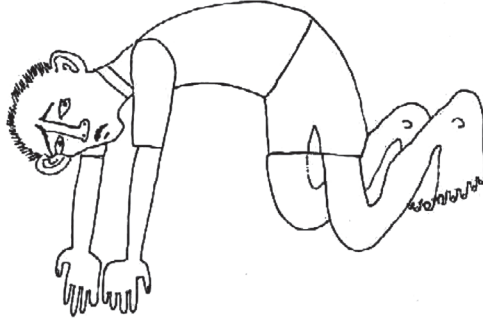
## क्यों मारें बच्चों को?

मास्साब सिर को टेबल पर टिकाकर, गुमसुम बैठ गए थे। कक्षा में सूई-पटक सन्नाटा पसर चुका था। मास्साब के दिमाग में कुछ विचार दौड़ने शुरू हुए। वे सोच रहे थे, “ये तो ऐसे ही चलता रहेगा...।” सोचते-सोचते वे विज्ञान की ट्रेनिंग के एक सत्र की याद में पहुँच गए जहाँ ‘आखिर क्यों मारें बच्चों को?’ विषय पर खुलकर चर्चा हुई थी। सत्र में कई शिक्षक-शिक्षिकाओं ने उन कारणों पर भी खुलकर चर्चा की थी कि स्कूलों में बच्चों पर जुल्म आखिर क्यों ढाए जाते हैं। कुछ ही शिक्षक-शिक्षिकाएँ बच्चों को दण्ड देने के पक्ष पर अड़े हुए थे। यही तर्क भारी लग रहा था कि बच्चों की पिटाई करना या उन्हें मानसिक यंत्रणा देना, इन्सानियत के खिलाफ है।

विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम का ताना-बाना कुछ इस प्रकार से बुना गया



चित्र: कैरन हंडाफ



चित्र: कैपलन हेर्बर्ट

कि शिक्षक-शिक्षिकाओं को अपने विचार व्यक्त करने और उनको पोषित करने के पर्याप्त अवसर मिलें। बच्चों के बारे में बातें तो बड़ी-बड़ी की जाती रही हैं, मगर सही मायनों में उन पर अमल तभी किया जा सकता है जब ये शिक्षकों के दिल में बैठ जाएँ। वैसे तो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, किसी विषय के प्रशिक्षण में शिक्षा और बच्चों के नज़रिए पर चर्चा की गुंजाइश बनती नहीं है। मगर विज्ञान शिक्षण के इस प्रशिक्षण में विषय, शिक्षणशास्त्र और सामाजिक मसले आपस में इस कदर गुँथे होते थे कि कहाँ विषय की सीमा है और कहाँ से शिक्षणशास्त्र प्रारम्भ होता है, यह समझ पाना आसान नहीं होता था।

विज्ञान शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम की बदौलत मास्साब की सोच धीरे-धीरे बदल चुकी थी। उनकी सोच की तराजू का पलड़ा न मारने की तरफ झुकता जा रहा था। यही वजह थी कि विज्ञान से सक्रिय रूप से जुड़ने के बाद, मास्साब का बच्चों को मारना

धीरे-धीरे कम हो गया था। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने बेटे को भी पीटना बन्द कर दिया था।

मास्साब अब सोच रहे थे, “नाहक ही मैं बच्चों पर बरस पड़ा...।” उन्होंने सिर ऊपर उठाया और बोले, “अच्छा तो ऐसा करते हैं कि आज ‘समूह’ वाला पाठ पढ़ेंगे।”

मास्साब के रुख में नरमी को बच्चे भाँप रहे थे। बच्चों ने चुपचाप अपने बस्तों में से किताब-कॉपी निकाली और मास्साब के निर्देश का इन्तज़ार करने लगे।

मास्साब कुछ बोलते, इतने में पीरियड खत्म होने का टोका लग गया।

\*\*\*

अगले दिन, मास्साब ने प्रधानाध्यापक से चर्चा करके दूसरे और तीसरे पीरियड को मिलाकर विज्ञान का एक ही पीरियड कर लिया था। इस प्रकार तय यह किया गया कि सप्ताह में विज्ञान की कक्षा



तीन दिन चलेगी। बाकी के तीन दिन किसी दूसरे विषय को दो पीरियड दिए जाएँगे। इसके पीछे समझ यह थी कि जब विज्ञान में प्रयोग, चर्चा, परिभ्रमण आदि होंगे तो दो पीरियड की व्यवस्था ठीक होती है।

बच्चों ने जो फ्यूज़ बल्ब से लेंस बनाया था, वह उनके झोले में था। जब भी मौका मिलता, बच्चे कुछ-कुछ देख लेते। कक्षा में मास्साब आ चुके थे। उन्होंने देखा कि बच्चे अभी भी फ्यूज़ बल्ब की मदद से चीज़ों का अवलोकन कर रहे हैं।

मास्साब को आता देख डमरू ने धीरे-से कक्षा के बाकी बच्चों को सतर्क कर दिया, “ओय... मास्साब!”

मास्साब ने डमरू को यह कहते हुए सुन लिया था। पर आज वे सहज लग रहे थे। “कोई बात नहीं। लगे रहो बेटा।”

मास्साब के प्यार भरे लहज़े ने कक्षा में खुशहाली का वातावरण पैदा कर दिया।

“तो सबसे पहला काम क्या होगा विज्ञान की कक्षा में?” मास्साब को अचानक याद आया कि वे कुछ गड़बड़ कर रहे हैं। वे तुरन्त बाहर गए और जूते कक्षा के बाहर खोलकर आए। उन्होंने ऐसे पूछा मानो बच्चों को ही तय करना हो कि उन्हें क्या पढ़ना है।

रघु बोला, “टोली बनेगी।”

“हाँ... बिलकुल ठीक कहा। तो

चलो फटाफट सभी अपनी-अपनी टोलियों में बैठ जाओ।”

कक्षा में कुछ देर के लिए हलचल हुई मगर जुल्द ही माहौल एकदम शान्त हो गया। सभी बच्चे टोलियों में बैठ चुके थे। चार-चार की टोलियों में दो-दो बच्चे आमने-सामने बैठे थे।

### समूह क्या होता है?

“चलो आज एक दूसरा काम करते हैं।” मास्साब ने कहा, “तो आज शुरुआत करते हैं समूह बनाना सीखने से। क्या होता है समूह? जानते हो?”

‘समूह’ शब्द बच्चों ने पहली बार सुना था। इस शब्द को बच्चों ने अपनी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में कभी इस्तेमाल नहीं किया था इसलिए उनकी समझ में कुछ भी नहीं आया। यही वजह थी कि बच्चों में इस शब्द के प्रति अनजानापन था। कक्षा के मूड को भाँपकर, माहौल को थोड़ा हल्का करने की कोशिश करने के लिए मास्साब बोले, “अरे, विज्ञान की कक्षा में इतना सन्नाटा किस बात का?”

मास्साब ने मन-ही-मन सोचा कि समूह का शाब्दिक अर्थ बताने से काम नहीं चलने वाला। बच्चों के साथ कुछ प्रक्रिया-गतिविधि करना ठीक रहेगा।

मास्साब ने बच्चों से कहा, “*बाल वैज्ञानिक* का पाठ-2 खोलें।” उन्होंने देखा कि 17 में से 4 बच्चों की किताबें

पुरानी हैं, और 10 बच्चे ऐसे थे जिनके पास किताब ही नहीं थी। दरअसल, प्रत्येक बच्चे के पास *बाल वैज्ञानिक* नहीं थी मगर प्रत्येक टोली में ज़रूर थी। तभी मास्साब को खयाल आया कि उनकी अलमारी में पिछले साल की कुछ किताबें रखी हुई हैं। अतः उन्होंने पुरानी *बाल वैज्ञानिक* बच्चों को दे देना उचित समझा।

“मैंने पाठ-2 खोला है।” मास्साब *बाल वैज्ञानिक* खोलकर सब बच्चों को दिखा रहे थे। उन्होंने पाया कि उनके सामने वाली टोली अभी भी पाठ नहीं खोल पाई है। मास्साब ने टोली की किताब ली व पाठ-2 खोलकर दे दिया। उसके बाद, उन्होंने बच्चों से पाठ की पहली दो लाइनों को पढ़ने और समझने के लिए कहा।

मास्साब के कहने पर बच्चे अपनी-अपनी टोलियों में पढ़ने लगे। वहीं, मास्साब कुछ देर तक, धैर्य के साथ, बच्चों के पढ़ने का अवलोकन कर रहे थे। उन्होंने पाया कि बच्चे पढ़ नहीं पा रहे हैं।

अब मास्साब ने किताब में से पढ़ा, “तुम रोज़ कई चीज़ें देखते हो, उन्हें काम में भी लेते हो। हर चीज़ को तुम अलग-अलग पहचान लेते हो क्योंकि इन चीज़ों में अन्तर होते हैं।...”

“तो समझ में आया?”

बच्चों ने एक साथ जवाब दिया, “हाँ...।”

“तो अब तुम सबको क्या करना है?” भागचन्द्र कहने लगा, “हाँ मास्साब, हम पहचान लेते हैं।”

“अच्छा, तो तुम अपने आसपास की ढेर सारी चीज़ों को पहचानते हो। जैसे कि...।”

“गाय, बकरी, चूहा, टेबल, पेन, पेंसिल...।” बच्चे कई चीज़ों के नाम बताए जा रहे थे।

मास्साब ने सटीक टिप्पणी की, “वेरी गुड!”

### सिलसिला अन्तर का

किताब में लिखे अनुसार, बच्चों को अलग-अलग टोलियों में दो-दो चीज़ें देते हुए मास्साब ने कहा, “अब इनमें दिखने वाले दो अन्तर बताना है।”

बच्चे चीज़ों को उलट-पलटकर देखने में व्यस्त हो गए।

मास्साब ने फिर से पूछा, “बताओ भई, इनके बीच क्या अन्तर है?”

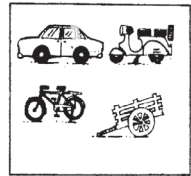
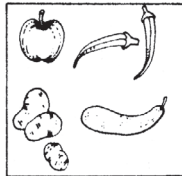
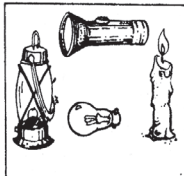
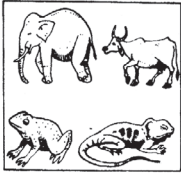
कक्षा में फिर सन्नाटा पसर गया था। बच्चों को अन्तर पता थे मगर असल समस्या यह थी कि वे बता नहीं पा रहे थे। मास्साब ने टोलियों में बैठे बच्चों पर नज़र डाली, पर बच्चे मास्साब से नज़रें चुरा रहे थे, और जब नज़र-से-नज़र मिलती तो बच्चे नज़रें झुका लेते। मास्साब ने बच्चों को पुकारकर पूछना ही उचित समझा। भागचन्द्र पर नज़र पड़ी, मगर उसने नज़रें चुरा लीं।

केशव घबराकर बोला, “मास्साब... समझ में नहीं आया।”

इस बार मास्साब ने कक्षा की एकमात्र लड़की, नारंगी की ओर इशारा किया और बोले, “ऐ तुम... हाँ बोलो!”

नारंगी सीधे हाथ में पेंसिल पकड़ने लगी और बाएँ हाथ में पेन। नारंगी बोली, “पेन प्लास्टिक का बना है। ...पेंसिल लकड़ी की।”

“शाबाश! और किसी को कुछ कहना है?” मास्साब ने कक्षा से पूछा।



नारंगी की टोली में से ही रघु ने हाथ खड़ा किया, “मास्साब!”

“यस!” मास्साब ने खुश होकर रघु को बोलने को कहा।

“पेंसिल में क्लिप नहीं है। पेन में क्लिप है।”

“वेरी गुड... एकदम सही कहा! पेन में क्लिप होता है।” उन्होंने अपनी जेब से पेन निकालकर बताया, “इस क्लिप की मदद से पेन को जेब में रख पाते हैं। जब हम झुकते हैं तो पेन गिरता नहीं है।” मास्साब के चेहरे पर खुशी छलक रही थी। मास्साब को

खुश देखकर अन्य टोलियों के बच्चों का आत्मविश्वास बुलन्दियों पर पहुँच गया।

भागचन्द्र को शुरुआत में समझ नहीं आया था कि आखिर कहना क्या है। जब उसने नारंगी और रघु के जवाब सुने तो समझ में आया कि मास्साब पूछना क्या चाह रहे हैं। भागचन्द्र अब हिम्मत जुटाकर बोला, “...मास्साब...पेन में सई (स्याही) डालनी पड़ती है। पेंसिल में नहीं डालनी पड़ती।”

भागचन्द्र बैठा भी नहीं था कि डमरू जोश में खड़े होकर बोला, “पेन का ढक्कन होता है। पेंसिल का ढक्कन नहीं होता।”

मास्साब अपनी दोनों हथेलियों को आपस में रगड़ते हुए बोले, “तो चलें, अब समानताएँ देखें।”

मास्साब टोलियों से जवाब का इन्तज़ार कर रहे थे। तभी पीरियड की घण्टी बजी, और बच्चे विज्ञान की किताब बन्द करने लगे मगर मास्साब ने कहा कि एक पीरियड और पढ़ेंगे।

मास्साब ने फिर से दोहराया, “जो

चीज़ें तुम लोगों को दी हैं, उनमें समानता बतानी है।” इतना कहने की देर थी कि कक्षा में कई सारे हाथ खड़े हो गए। हर कोई कुछ कहने को उतावला दिख रहा था। अब पेन व पेंसिल में समानता की झड़ी लग चुकी थी।

### विज्ञान किट से रू-ब-रू

अगली गतिविधि प्रारम्भ करने की तैयारी मास्साब के दिमाग में बनी हुई थी। वे कक्षा से बाहर निकले और बच्चों से बोले, “चलो, दो-तीन होशियार बच्चे मेरे साथ आ जाओ।”

मास्साब के इस कथन पर मानो पूरी कक्षा ही बाहर आने को थी। दरवाज़े पर भगदड़ मच चुकी थी। हर कोई मास्साब के साथ जाने को उतावला हुआ जा रहा था। मास्साब को आखिर कहना पड़ा, “समझ गया... सभी समझदार हो... देखो, मैंने दो-तीन बच्चों को आने का कहा है।”

इस बार भी वही हाल हुआ जो पहली बार मास्साब के कहने पर हुआ था। मास्साब ने सभी बच्चों को कक्षा के अन्दर कर दिया। अब उन्होंने बच्चों के नाम पुकारे, “हुँह... चन्दर, इसरार, विष्णु। बस... आ जाओ...।”

थोड़ी देर बाद तीनों बच्चे अपने हाथों में सामान लेकर कक्षा में लौट रहे थे। इनमें से अधिकांश सामग्री ऐसी थी जो बच्चे पहली बार देख रहे थे। यही वजह थी कि बच्चे न तो उनके नाम जानते थे, न ही काम।

मास्साब कक्षा में आ चुके थे और सभी बच्चे एक गोले में बैठ चुके थे। चीज़ों को कक्षा के बीचों-बीच रखा जा चुका था। मास्साब चीज़ों को उठा-उठाकर बच्चों को दिखाए जा रहे थे। वे बोले, “देखो... इन सभी चीज़ों को अच्छे से जान लो। ठीक...।” अब की बार उन्होंने अपनी बाईं ओर बैठे रघु को काँच की एक लम्बी-सी बेलनाकार चीज़ देते हुए कहा, “जानते हो इसका नाम क्या है?” रघु ने कोई जवाब नहीं दिया। मास्साब ने कहा, “ये परखनली है।”

रघु परखनली को उलट-पलटकर देख रहा था। उसने परखनली के मुँह पर फूँक मारी और कुछ परखना चाहा। इधर मास्साब ने दूसरी चीज़ रघु की ओर बढ़ा दी थी। इस वजह से उसे परखनली अपने पास बैठे इसरार को देनी पड़ी। इस तरह से चीज़ें इसरार से भागचन्द्र, नारंगी, विष्णु, डमरू, चन्दर, केशव... के बीच सफर कर रही थीं।

जब बच्चों ने विज्ञान की किट सामग्री को देख लिया तो मास्साब एक साँस में बोले, “अब हम एक तालिका बनाएँगे और समूहीकरण करेंगे।”

### तालिका उर्फ डब्बा

मास्साब ने चॉक उठाई और बोर्ड पर एक बड़ा-सा खाना बनाया। बड़े खाने में फिर और छोटे-छोटे खाने बनाए। ऐसे उन्होंने एक साँस में



क्रमांक	समूह का नाम	समूह में आने वाली चीज़ें
1	काँच की चीज़ें	
2	लकड़ी की चीज़ें	
3	प्लास्टिक की चीज़ें	
4	आर-पार दिखने वाली चीज़ें	
5	गोलाकार चीज़ें	
6	पानी पर तैरने वाली चीज़ें	

तालिका बना दी। बच्चे अपनी कॉपी में तालिका को ठीक से नहीं बना पा रहे थे। दरअसल, बच्चों के लिए कॉपी में तालिका बनाने का यह पहला अवसर था। बोर्ड पर तालिका बनाकर मास्साब इन्तज़ार कर रहे थे कि बच्चे भी बना लें, फिर बातचीत शुरू करें।

उन्होंने देखा कि बच्चे तालिका बनाने की कोशिश तो कर रहे हैं मगर समस्या तो लिखने की भी है। बच्चे न केवल पढ़ने में बल्कि लिखने में भी कमज़ोर हैं। मास्साब सोच रहे थे, “इस मुसीबत से कैसे निपटा जाए?”

टोलियों में बैठे बच्चे तालिका बनाने के चक्कर में कॉपी के कई पेज बिगाड़ चुके थे। वे फन्ने-दर-फन्ने फाड़ते जा रहे थे, मगर सही तौर पर तालिका नहीं बन पा रही थी।

इसरार हिम्मत जुटाकर बोला, “मास्साब, यह डब्बा नहीं बन रहा...।”

मास्साब ने इसरार के मुँह से जब ‘डब्बा’ सुना तो उन्होंने तय कर लिया कि भले ही किताब में तालिका लिखा हो, मगर वे अब डब्बा ही बोलेंगे। उन्होंने जो तालिका बोर्ड पर बनाई थी, उसे कपड़े से मिटाते हुए निर्देश दिया, “अच्छा तो ऐसा करते हैं कि पहले एक बड़ा डब्बा बनाओ।” यह कहते हुए मास्साब ने बोर्ड पर एक बड़ा-सा डब्बा बनाया।

टोलियों ने भी अपनी-अपनी कॉपी में एक बड़ा-सा डब्बा बना लिया था। अब मास्साब ने बड़े डिब्बे में दो खड़ी लाइनें खींचीं। इस तरह से बड़े डिब्बे में तीन डिब्बे बन गए। इन तीन डिब्बों में से दाएँ हाथ की ओर वाले दो डिब्बे लगभग बराबर थे, मगर बाएँ हाथ वाला डिब्बा सँकरा। अब मास्साब ने डिब्बे में छह आड़ी लाइनें खींचीं। बच्चों ने, मास्साब का अनुसरण कर, यह काम भी बखूबी कर लिया था।

मास्साब ने बोर्ड के बगल में खड़े

होकर चॉक से सने हाथ झटकारते हुए पूछा, “तो सबने कर लिया इतना?”

अब मास्साब ने सबसे ऊपर के आड़े खानों में से बाईं ओर के सँकरे खाने में ‘क्रमांक’ लिखा, फिर उसके दाईं ओर वाले में ‘समूह का नाम’ और उसके पास वाले खाने में लिखा ‘समूह में आने वाली चीज़ें’।

मास्साब सोच रहे थे कि तालिका बनाने में इतना समय चला गया तो समूहीकरण की समझ कब विकसित होगी। झट-से उनके दिमाग में आया कि तालिका बनाना भी तो एक हुनर है। अगर तालिका का खाका खींचना आज नहीं सीख पाए, तो आगे इससे कैसे पार पाएँगे। वे धैर्यपूर्वक इन्तज़ार कर रहे थे। इन्तज़ार करते-करते, वे एक बार फिर उस प्रशिक्षण की जीवन्त कक्षा की याद में पहुँच गए जहाँ समूह की अवधारणा को समझने के लिए घण्टों तक बेबाक बहस, तर्क-वितर्क चला था। वे सोच रहे थे कि आखिर इन बच्चों के बीच वैसा वातावरण कैसे बनाया जाए। हालाँकि, वे यह जानते थे कि किताब में इस प्रकार की बहस का कोई ज़िक्र नहीं, यह तो उस प्रशिक्षण के स्रोत सदस्यों की ही खूबी थी।



चित्र: रंजीत बालमुचु

### बातों-बातों में समूहीकरण

अब तक बच्चों ने तालिका बनाने का काम पूरा कर लिया था। मास्साब अभ्यास पढ़कर कक्षा में चर्चा का माहौल बनाने की योजना बना रहे थे। वे मुस्कराते हुए बोले, “..ऐसा करते हैं कि हम अब कुछ बातें करते हैं।”

बच्चों ने जब यह सुना तो नारंगी अपने पास बैठे रघु के कान के पास मुँह ले गई और बुदबुदाई, “आज मास्साब खुश हैं...।”

मास्साब ने नारंगी की हरकत को देख लिया मगर उसने रघु के कान में क्या कहा, यह उनके लिए पहेली ही थी। मास्साब ने रघु से पूछा, “क्यों भई, तुम्हें क्या कह रही है नारंगी?” रघु सोच रहा था कि अगर सच बता दिया तो नारंगी गुस्सा हो सकती है। इसलिए उसने हाज़िर जवाब दिया, “वो... पेन माँग रही है।”

मास्साब ने बच्चों से कहा, “अच्छा तो अभी पेन वगैरह को रख लो अपने बस्ते में। मैं जो कहता हूँ उसे सुनो। ऐसा करो कि पूँछ वाले दस जानवरों के नाम बताओ।” हर कोई उतावला हो रहा था बताने को। मास्साब ने तो दस नाम पूछे थे मगर बच्चों की ओर से दुगने नाम आ चुके थे। वे बच्चों से इसी तर्ज़ पर सवाल करते और बच्चे फटाफट जवाब देते जाते। मास्साब बोर्ड पर लिखते जा रहे थे। बोर्ड पूरा भर चुका था।

अब मास्साब ने बच्चों से कुछ और सवाल पूछने का बीड़ा उठाया, “तो बताओ कि तवा किसमें आएगा?”

भागचन्द्र बोला, “तवा... गोल में।”

इसरार बोला, “...मास्साब, बोर्ड पर गोल चीज़ तो है ही नहीं।”

मास्साब बोर्ड की ओर देखकर बोले, “हाँ... करेक्ट। हम गोल चीज़ों की बात करते तो तवा तो आता न इस ग्रुप में।”

रघु ने अपनी टोली में पहले विचार रखे, “तवा लोवे (लोहे) का है।”

टोली के बाकी सदस्यों ने रघु को बोला, “खबर है...। बोल दे। तू नहीं बोले तो फिर हम बोलेंगे।” रघु फट-से खड़ा हुआ और उसने बोला, “तवा लोहे का है।”

“अच्छा, अब बताओ मेंढक पूँछ वाले समूह में आएगा कि नहीं?” मास्साब पीछे की ओर बैठी टोली से मुखातिब हो रहे थे।

टोली में बच्चे आपस में विमर्श कर रहे थे। “हाँ... डेंडक का ही पूँछ रहे हैं।” बच्चे समझ चुके थे कि मास्साब, दरअसल, मेंढक यानी कि उनकी अपनी भाषा में डेंडक का ही ज़िक्र कर रहे हैं। टोली में से इसरार खड़ा हुआ और उसने कहा, “नहीं, मास्साब! डेंडक तो बिना पूँछ वाला है।”

### डेंडक का अचार

भागचन्द्र कहने को कुलबुला रहा था। वह कुछ कहने को उठा तो सही मगर संकोच आड़े आ रहा था। मास्साब ने भागचन्द्र समेत पूरी कक्षा के बच्चों को आश्वस्त किया, “अरे भई, बोलना हो तो बोल दो। जो भी कहना चाहो, बेझिझक कह सकते हो।”

भागचन्द्र ने हिम्मत जुटाई और बोला, “मास्साब, डेंडक का तो अचार बनाकर खाते हैं।”

भागचन्द्र की बात सुनकर पूरी कक्षा अचरज कर रही थी। मास्साब को भी मेंढक के अचार वाली बात ने

अचरज में डाल दिया था। दरअसल, मास्साब ने भी कहीं यह पढ़ा तो था इसलिए वे कुछ देर तक सोचते रहे। फिर अचानक बोले, “अभी हम मेंढक की पूँछ की बात कर रहे हैं। जो तुमने देखा है मेंढक में, वो बताओ।”

भागचन्द्र कुछ और कहना चाह रहा था, “...मास्साब, उन्दरे (चूहे) भी खाते हैं।”

मास्साब भागचन्द्र की बात को टालना चाह रहे थे।

मास्साब मेंढक और चूहों के खाने वाले मसले पर कुछ ज़्यादा कहने की स्थिति में नहीं थे। वे समूहीकरण पर अटके हुए थे। वे सोच रहे थे कि अगर इधर-उधर की बात की तो समूहीकरण एक तरफ धरा रह जाएगा।

बहरहाल, मास्साब ने भागचन्द्र और बाकी बच्चों को आश्वस्त किया, “खाने-पीने की बात तुम भोजन वाले पाठ में जी भरकर करना।”

## मास्साब की चिन्ता

मास्साब जिस समस्या से जूझ रहे

थे, वह यह कि समूहीकरण की अवधारणा किस तरह बच्चों के दिमाग में बिटाई जाए। बच्चे गतिविधि के तौर पर तो समूहीकरण कर पा रहे थे, मगर उन्हें गुणधर्म चुनने में काफी दिक्कतें हो रही थीं। मास्साब सोच रहे थे कि आखिर इस समस्या को कैसे हल किया जाए। बच्चे एक-एक चीज़ के गुण तो बखूबी बता देते, मगर जब कई सारी चीज़ें एक साथ होतीं तो उनको एक गुणधर्म में बाँधने का कौशल विकसित नहीं हुआ था।

मास्साब चिन्तित थे। वे जानते थे कि समूहीकरण बाल विज्ञान की एक मूल अवधारणा है। अतः इस चुनौतीपूर्ण अवधारणा पर गहराई-से काम करने की आवश्यकता है। फिर उन्हें ध्यान आया कि आगे के लगभग सभी पाठों में समूहीकरण तो होगा ही। सो, उन्होंने तय किया कि आगे समूहीकरण के कौशल को और बेहतरी से विकसित करने की कोशिश करनी होगी।

...जारी

---

**कालू राम शर्मा (1961-2021):** अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, खरगोन में कार्यरत थे। स्कूली शिक्षा पर निरन्तर लेखन किया। फोटोग्राफी में दिलचस्पी। *एकलव्य* के शुरुआती दौर में धार एवं उज्जैन के केन्द्रों को स्थापित करने एवं मालवा में विज्ञान शिक्षण को फैलाने में अहम भूमिका निभाई।

**चित्र: कैरन हैडॉक एवं रंजीत बालमुचु।**



## कोण को मापे कौन?

यहाँ कोणों के दो बहुत कम चर्चित पहलुओं की चर्चा की गई है जो दो अलग-अलग क्षेत्रों से सम्बन्धित हैं। पहला हिस्सा, सीधे ही मापन की समस्याओं में जाता है और दूसरा हिस्सा कोणों को मापने के वैकल्पिक तरीकों की चर्चा करता है। तो पढ़ें इस आलेख को, ताकि आप अपनी कक्षा में कोणों को मापने की ऐतिहासिक ज़रूरत एवं वास्तविक जीवन में उनके उपयोग मात्र से कुछ अधिक की चर्चा कर सकें।

**को**णों के औपचारिक अध्ययन के दौरान बच्चों को जो दिक्कत पेश आती है, उससे ऐसा लग सकता है कि कोण और रेखा के घुमाव के माप से छोटे बच्चों का परिचय नहीं करवाना चाहिए। लेकिन, शुरुआती बाल्यावस्था की गणित की पढ़ाई के लक्ष्यों के तौर पर इन्हें शामिल करने के जायज़ कारण भी हैं। पहला, बच्चे अनौपचारिक तौर पर कोण और घुमाव के माप की तुलना कर सकते हैं और वे ऐसा करते भी हैं। दूसरा, निहित रूप में ही सही किन्तु, कोण के आकार का इस्तेमाल आकृतियों के साथ काम करने में आवश्यक है। उदाहरण के लिए, जो बच्चे एक वर्ग और एक अवर्ग समचतुर्भुज में फर्क करते हैं, वे अपने सहज बोध के स्तर पर ही सही, लेकिन कोण के आकार के सम्बन्धों को पहचान रहे होते हैं। तीसरा, पूरी स्कूली शिक्षा के दौरान ज्यामिति में कोण का माप एक धुरी की भूमिका निभाता है और शुरुआत में ही इसकी नींव डालना पाठ्यचर्या का एक उपयुक्त

लक्ष्य है। चौथा, शोध इस ओर इशारा करते हैं कि जहाँ प्रारम्भिक स्कूली शिक्षा के दौरान बहुत कम प्रतिशत में बच्चे कोणों को बखूबी सीख पाते हैं, वहीं छोटे बच्चे इन अवधारणाओं को सफलतापूर्वक सीख लेते हैं।

स्रोत: [1]

स्रोत [1] में और पढ़ने पर हम कोण के मापन में सीखने का मार्ग देख पाते हैं, जो अपने सहज बोध से कोण बनाने वाले बच्चे (2-3 वर्ष आयु) से शुरु होकर समझ के साथ कोण का उपयोग करने वाले (4-5 वर्ष), कोण का मिलान करने वाले (6 वर्ष), कोण के आकार की तुलना करने वाले (7 वर्ष) और कोण का माप करने वाले बच्चे (8+ वर्ष) तक जाता है।

यह आलेख कोण के मापन पर केन्द्रित है, जिसे ऊपर बताए गए सीखने के क्रम के अनुसार तीसरी कक्षा में सिखाया जाना चाहिए, किन्तु

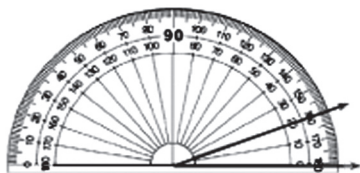
जो छात्रों के लिए अगले दो या तीन वर्षों तक भी मुश्किल बना रहता है।

अधिकतर वयस्कों के लिए कोण कोई कठिनाई नहीं पेश करते हैं। किसी भी कोण का एक शीर्ष होता है और दो भुजाएँ होती हैं, जो एक निश्चित अंश (डिग्री) तक फैली होती हैं, जो कोण का 'माप' कहलाता है। इस अंश को चाँदा (प्रोटेक्टर) नाम के एक सरल उपकरण का उपयोग कर मापा जा सकता है। यह परिभाषा कई पाठ्यपुस्तकों में मौजूद है। यह तो इतनी सरल अवधारणा प्रतीत होती है कि यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि इसे समझने में किसी को कठिनाई होगी। अक्सर कार्यपुस्तिकाएँ एक या दो पन्नों में कोण का परिचय देती हैं और फौरन ही कोण के रेखाचित्र बनाने और मापन और कोण के हिस्सों को नाम देने की ओर बढ़ चलती हैं। लेकिन, ज़रा छात्रों से एक उल्टे शंकु का माप लेने को कहें – आप पाएँगे कि अधिकतर को चाँदा ठीक तरह से रखने में भी कठिनाई होगी। या फिर, भुजाओं की अलग-अलग लम्बाई वाले दो बराबर कोण

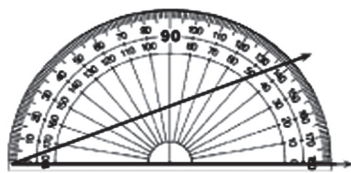
दिखाकर पूछें कि इनमें से बड़ा कौन-सा है; अधिकतर उस कोण को बड़ा बताएँगे जिसकी भुजाओं की लम्बाई अधिक है। या फिर, चित्र-1 में दर्शाई गई स्थिति पर ध्यान दें, जहाँ छात्र को लगता है कि चाँदा पूरी आधार रेखा पर व्याप्त होना चाहिए।

ऐसी भ्रान्त धारणाएँ क्यों बनती हैं? क्या ऐसा इसलिए है क्योंकि हम शुरुआत से ही बच्चों के दिमाग को शीर्ष (vertex), रेखाखण्ड (line segment), किरण (ray) जैसी शब्दावली से भर देते हैं और मापन से जुड़े व्यावहारिक कार्यों को नज़रअन्दाज़ कर देते हैं? तो ज़रा उठाइए चाँदा और ध्यान से देखिए। इस पर बनी रेखाओं और चिह्नों (घड़ी की सुई की दिशा में व विपरीत [दक्षिणावर्त व वामावर्त]) और इस पर लिखी हुई संख्याओं के अम्बार के साथ इसे इस्तेमाल करना क्या वाकई इतना आसान है? सच कहें तो, यह किसी चमत्कार से कम नहीं है कि बच्चे इसका इस्तेमाल करना सीख जाते हैं!

इस आलेख में हम सीखने वाले



20° कोण...



...या 40° कोण?

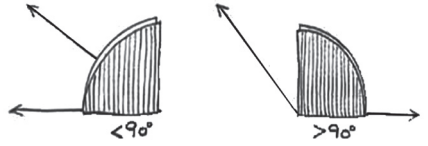
**चित्र-1:** 20° कोण या 40° कोण? कुछ छात्र इसे 40° कोण बताएँगे।

छोटे बच्चों का कोणों से परिचय करवाने के लिए कड़ी-दर-कड़ी कुछ सुझाव पेश करेंगे। यह इस विश्वास से प्रेरित है कि जो चीज़ बच्चों के ठोस संसार से सम्बन्धित होगी, उसका अधिगम परिणाम यानी सीखना कहीं बेहतर होगा।

## कोणों के साथ खेल-खिलवाड़

कोणों को दो नज़रियों से परिभाषित किया गया है – एक बिन्दु से निकलती दो किरणों से बनी ‘आकृति’ के रूप में अथवा ‘घूर्णन’ या ‘वर्तन’ की तरह। कभी-कभी छात्र सोचते हैं कि ये अलग-अलग अवधारणाएँ हैं। कोणों से जुड़ी गतिविधियों में दोनों ही अभिप्रायों को शामिल करना चाहिए ताकि छात्र कोण शब्द के अन्तर्निहित अर्थ को समझ सकें।

कागज़ के एक वृत्त को चौथाई हिस्सों में तह करके (किनारे गोलाकार रहेंगे) शिक्षक यह दर्शा सकते हैं कि समकोण कैसे बनाया जाता है। छात्र इसे अलग-अलग कोणों की सीध में बिठाकर यह समझ सकते हैं कि दो कोणों की सही तरीके से तुलना कैसे की जाए (चित्र-2)। यह साधन चाँदे के एक शुरुआती रूप की तरह भी काम में लिया जा सकता है। इसी आकृति को मोड़कर या खोलकर छोटे या बड़े कोण बनाए जा सकते हैं। इसके बाद, ‘न्यून’ (acute) और ‘अधिक’ (obtuse)

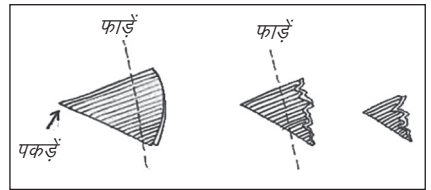


चित्र-2

शब्दों से परिचय करवाना तो महज़ सम्बन्ध बैटाने का काम है।

इस तह की हुई आकृति का एक रोचक उपयोग भुजा की लम्बाई के साथ कोण की अपरिवर्तनीयता को दर्शाने में किया जा सकता है; यह एक ऐसी अवधारणा है जिससे कभी-कभी उच्च प्राथमिक स्तर के छात्र भी जूझते पाए जाते हैं। कागज़ को शीर्ष से पकड़िए और फाड़ दीजिए (चित्र-3)। इति सिद्धम्।

एक अन्य तरीका एक डोरी और दो स्ट्रॉ उपयोग करने का है (चित्र-4)। इसमें स्ट्रॉ को भुजाओं के साथ में आगे-पीछे करते हुए न केवल भुजा की लम्बाई से कोण की अपरिवर्तनीयता को दर्शाया जा सकता है, बल्कि शीर्ष दिखाई न देने के बावजूद महज़ ‘कल्पना में’ कोण बन जाने की धारणा को भी दर्शा सकते हैं। त्रिकोणमिति में ‘ऊँचाइयाँ



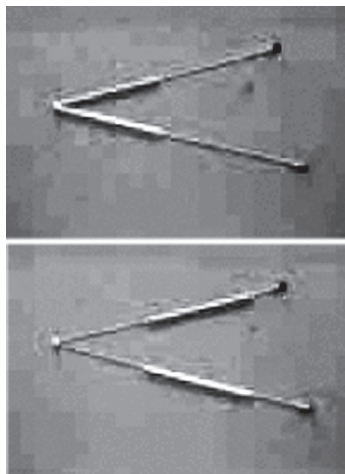
चित्र-3

एवं दूरियाँ विषय को पढ़ते हुए कक्षा 9 और 10 के छात्र इस समस्या का सामना करते हैं।

क्या आपकी कक्षा में ऐसे छात्र हैं जो गतिविधियों के ज़रिए बेहतर समझते हैं? यदि ऐसा है तो उन्हें कोण की धारणा का परिचय 'कोण योगा' के खेल से करवाइए। एक हाथ को स्थिर रखकर शून्य की स्थिति से शुरू करते हुए 'सम कोण', 'न्यून' और 'अधिक' पुकारिए और दूसरे हाथ को उसके अनुसार ले जाइए। जब बच्चे यह करते हैं तो उन्हें कई बातें समझ में आती हैं, उदाहरण के लिए, हाथों की लम्बाई अलग-अलग होने के बावजूद सभी बच्चे समान कोण प्रदर्शित कर सकते हैं; न्यून और अधिक कोणों के लिए कई सही कोण हो सकते हैं; स्थिर भुजा का

आड़ा (क्षैतिज) या खड़ा (लम्बवत) होना आवश्यक नहीं है; कोणों की दिशा अलग-अलग हो सकती है। सबसे महत्वपूर्ण तो यह कि वे कोण बनाने के लिए अपने हाथों का उपयोग करके अन्दाज़ लगाने की कला सीखते हैं।

घूर्णन को मापने का एक रोचक तरीका कक्षा के दरवाज़े का इस्तेमाल है (चित्र-5)। शिक्षक ज़मीन पर 15-15° या 30-30° के अन्तराल पर 0° से 90° का कोण चिह्नित कर देते हैं। यह स्वयं सीखने का साधन बन जाता है; बच्चे इसके साथ अन्तर्क्रिया करते हुए सीखते हैं। हो सकता है कि उन्हें तुरन्त ही समझ में न आए कि अंश के चिह्न का क्या मतलब है या क्यों कहीं-कहीं चिह्न नहीं बनाए गए हैं। कुछ को यह जिज्ञासा भी हो सकती



चित्र-4



चित्र-5

है कि यदि दरवाज़ा और ज़्यादा खुले तो क्या हो: तब भला कोण का मापन कैसे किया जाए?

(इससे मुझे एक विचार आता है कि चाँदे को धातु की एक पतली पत्ती से क्यों नहीं बनाया जाता है, जो एक धुरी पर घूमे और  $0^\circ$  से  $180^\circ$  तक खुल जाए?)

इस पड़ाव पर शीर्ष, रेखा खण्ड और किरण जैसी शब्दावली से परिचय कराया जा सकता है। चूँकि छात्र इकाई की पुनरावृत्ति का उपयोग करके लम्बाई का माप करने से परिचित हैं, तो मापन की इकाई के रूप में अंश उनके लिए स्वीकार्य होना चाहिए। घूर्णन की अवधारणा को समझने में छात्रों के लिए जीओजेब्रा\* (GeoGebra) एक बेहतरीन साधन हो सकता है।

## कोणों को मापने के विभिन्न तरीके

अब, जबकि छात्रों ने चाँदे का उपयोग करके कोण मापना सीख लिया है तो वे कोण मापने के अन्य तरीकों और उनके फायदे व नुकसान की जाँच-पड़ताल कर सकते हैं।

मुमकिन है कि प्राचीन ज्यामितिज्ञ भुजाओं के बीच एक निश्चित दूरी पर

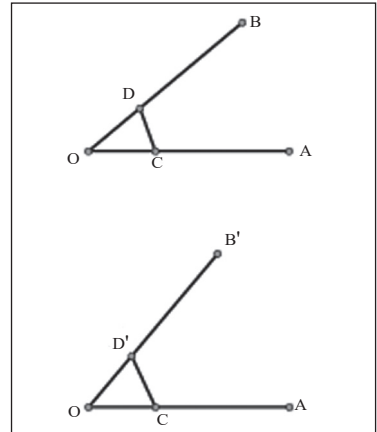
\* जियोजेब्रा ज्यामिति, बीजगणित, सांख्यिकी और कलन के लिए एक इंटरैक्टिव प्रोग्राम है, जिसका उद्देश्य प्राथमिक विद्यालय से विश्वविद्यालय स्तर तक गणित और विज्ञान को सीखना और सिखाना है। जियोजेब्रा डेस्कटॉप, टैबलेट और वेब ऐप्स के साथ-साथ कई प्लेटफॉर्म पर उपलब्ध है।

एक रेखीय खण्ड को जमाकर कोणों का माप करते हों? आइए, देखें कि इससे हम क्या पाते हैं।

माना कि,  $\angle AOB$  को मापने के लिए हम शीर्ष से 1 इकाई की दूरी पर, प्रत्येक भुजा पर क्रमशः बिन्दु C व D चिह्नित करते हैं, और खण्ड CD खींचते हैं। तब CD की लम्बाई  $\angle AOB$  का माप मानी जाएगी (चित्र-6)। हम इसे कोणों को मापने की जीवा विधि (chord method) कहते हैं।

## जीवा विधि - कहाँ सफल

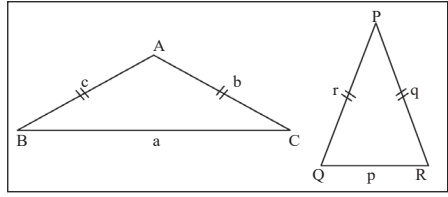
यह पद्धति क्रम सम्बन्ध (order relation) को बनाए रखती है और इसे जाँचा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, यदि  $\angle AOB < \angle AOB'$  तो  $CD < CD'$  होगा; और ऐसा ही इसके विपरीत भी होगा। यह देखने के लिए कि ऐसा



चित्र-6: यहाँ  $OC = OD = OD'$ । यदि  $CD' > CD$  तो  $\angle AOB' > \angle AOB$ , और ऐसा ही इसके विपरीत भी होगा।

क्यों है, हम यहाँ 'भुजा-कोण-भुजा सर्वांगसम प्रमेय के असमान रूप' (हम केवल समद्विबाहु त्रिभुजों - isosceles triangles - पर लागू होने वाले रूप को ही लेंगे क्योंकि हमें केवल उसी की आवश्यकता है) को लागू करेंगे, जो यह कहती है (चित्र-7) : माना कि  $\triangle ABC$  और  $\triangle PQR$  समद्विबाहु हैं, जहाँ  $AB = AC = PQ = PR$  है। ऐसे में: यदि  $\angle P < \angle A$ , तो  $QR < BC$ ; और यदि  $QR < BC$  तो  $\angle P < \angle A$ । इसे विशुद्ध ज्यामिति का उपयोग करके साबित किया जा सकता है, लेकिन हम इसका प्रमाण आप पर छोड़ते हैं। हो सकता है कि कुछ पाठकों को आगे दिया गया त्रिकोणमितीय प्रमाण अधिक भाए।

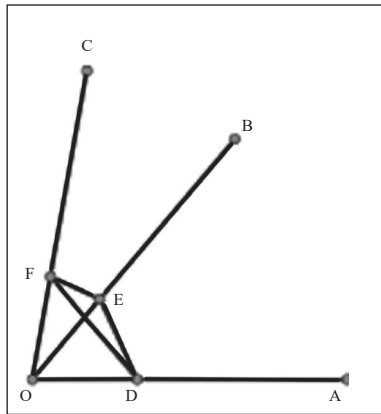
एक समद्विभुज  $\triangle ABC$  में जहाँ  $b = c$  हो, तो  $a = 2b \sin A/2$  होगा। चूँकि  $b$  स्थिर है और  $\sin x$   $0^\circ$  से  $90^\circ$  तक के अन्तराल में  $x$  का एक बढ़ता हुआ फलन (increasing function) है, तो इस प्रकार जब  $\angle A$   $0^\circ$  से  $180^\circ$  को बढ़ेगा तब  $a$  भी बढ़ेगा; और इसके विपरीत भी यही होगा। यही निष्कर्ष तब भी प्राप्त होगा यदि हम कोज्या (cosine) नियम का उपयोग करें, जो यह परिणाम देगा:  $a^2 = 2b^2 (1 - \cos A)$ , लेकिन अब हम इस तथ्य का उपयोग करते हैं कि  $\cos x$   $0^\circ$  से  $180^\circ$  तक के अन्तराल में  $x$  का एक घटता फलन (decreasing function) है।



चित्र-7

## जीवा विधि - कहाँ विफल

अतः कोणों को मापने की जीवा विधि क्रम सम्बन्ध को बनाए रखती है। किन्तु यह दूसरे परीक्षण में विफल साबित होती है, जो कि उतना ही महत्वपूर्ण है: *योज्यता* (additivity)। इसे देखने के लिए कि यह क्या है, आसन्न कोणों  $\angle AOB$  और  $\angle BOC$  के युग्म को लें,  $OB$  साझा भुजा है (चित्र-8)। चूँकि  $\angle AOC = \angle AOB + \angle BOC$  का सम्मिलन है और उन दो कोणों के बीच कोई अतिव्यापन (overlap) नहीं है, तो यह मानना उचित ही होगा कि  $\angle AOC$  को  $\angle AOB$  व  $\angle BOC$  के माप के योग के बराबर होना चाहिए।



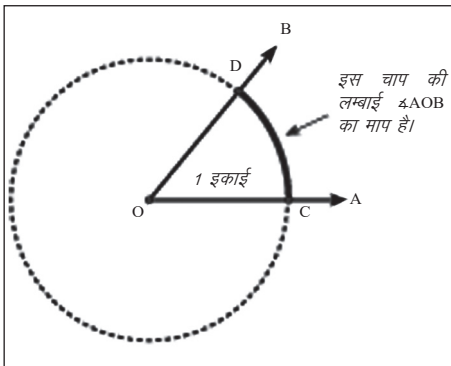
चित्र-8



किन्तु, क्या यह अपेक्षा जीवा विधि पर खरी उतरती है?

माना कि OA, OB, OC किरणों पर D, E, F बिन्दु हैं, जो कि OD = OE = OF = 1 इकाई है। परिभाषा के अनुसार,  $\angle AOB$ ,  $\angle BOC$  व  $\angle AOC$  की जीवा माप क्रमशः DE, EF व DF लम्बाइयाँ होंगी। क्या यह सही है कि  $DE + EF = DF$  होगा? स्पष्ट है कि ऐसा नहीं है। दरअसल, हमें हमेशा  $DE + EF > DF$  प्राप्त होगा क्योंकि किसी भी त्रिभुज की दो भुजाएँ मिलकर तीसरी भुजा से बड़ी ही होंगी (यहाँ  $\triangle DEF$  पर लागू)। अतः,  $\angle AOB$  व  $\angle BOC$  का योग  $\angle AOC$  से अधिक है। इस तार्किकता से हम पाते हैं कि किसी कोण का जीवा माप योज्यता के परीक्षण में विफल साबित होता है।

(नोट: उपर्युक्त तर्क यह मानकर किया गया है कि चित्र-8 में दर्शाए गए D, E, F एक सरल रेखा पर स्थित नहीं



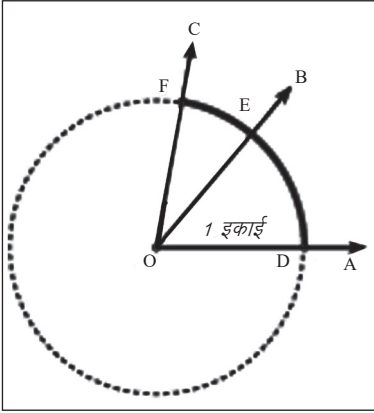
चित्र-9

हैं। लेकिन हम यह कैसे सुनिश्चित करें कि वे एक सरल रेखा पर स्थित नहीं हैं? यदि हम इसका कोई औचित्य प्रदान नहीं करते हैं तो हमने जो कहा है, वह अधूरा रह जाता है। पाठकों से आग्रह है कि इसका प्रमाण वे स्वयं प्राप्त करें।

## कोण मापने की चाप विधि

हमें नहीं पता कि प्राचीन ज्यामितिकोण के मापन में जीवा की लम्बाई का उपयोग करते थे या नहीं। वे जो मापन विधि इस्तेमाल करते थे, वह वही है जो हम वर्तमान में उपयोग करते हैं और इसमें अपेक्षित दोनों ही गुणधर्म हैं – क्रम सम्बन्ध और योज्यता का गुण। यह चाप की लम्बाई (arc length) पर आधारित है। इसमें, दिए गए  $\angle AOB$  पर हम शीर्ष से 1 इकाई की दूरी पर, प्रत्येक भुजा पर क्रमशः बिन्दु C व D चिह्नित करते हैं और एक वृत्त बनाते हैं जिसका केन्द्र O है और जो C व D से होकर गुजरता है। तब, चाप CD की लम्बाई  $\angle AOB$  का माप मानी जाती है (चित्र-9)।

आइए, देखें कि यह परिभाषा योज्यता का क्या करती है। चित्र-10 में हम देखते हैं कि  $\angle AOB$  व  $\angle BOC$  की साझी भुजा OB है। जैसा कि चित्र-10 में दिखाया गया है, दोनों कोण एक-दूसरे पर अतिव्याप्त नहीं हैं। उनकी चाप का माप चाप DE व EF



चित्र-10

की लम्बाई है और ये दोनों ही उस वृत्त का हिस्सा हैं जिसकी त्रिज्या 1 इकाई है और जिसका केन्द्र O है।  $\angle AOC$  की चाप की माप इकलौते चाप DF की लम्बाई है। क्या चाप DF की लम्बाई चाप DE और EF की लम्बाइयों के योग के बराबर होगी? स्पष्ट है कि ऐसा ही होगा, क्योंकि सभी चाप एक ही वृत्त के हिस्से हैं

**आभार:** यह आलेख विभिन्न मंचों पर कई गहन और दिलचस्प विचार-विमर्श का नतीजा है। अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के विश्वविद्यालय स्रोत केन्द्र में गणित की स्रोत व्यक्ति अनुपमा ने एक सेमिनार में 'कोण' पर पर्चा प्रस्तुत किया। इसके बाद ऑनलाइन 'मैथ लर्निंग ग्रुप' में एक सजीव बहस छिड़ी जो कोणों को लेकर छात्रों में व्याप्त भ्रान्तियों और शिक्षकों द्वारा उन्हें दूर करने के तरीकों पर केन्द्रित थी। 'मैथ लर्निंग ग्रुप' इस चर्चा में रवि सुहमण्यम (एच.बी.सी.एस.ई.), शैलेश शिराली (कोमैक), हृदयकान्त दीवान (विद्या भवन सोसायटी), रामचन्द्र कृष्णमूर्ति (अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय), राजवीर सांधा और ज्योति त्यागराजन के योगदान के लिए उनका आभार प्रकट करता है।

**अंग्रेज़ी से अनुवाद: हिमालय तहसीन:** स्वतंत्र अनुवादक एवं कॉपीएडिटर हैं।

यह लेख *एट राइट एंगल्स* के वॉल्यूम 2, नं. 2, जुलाई 2013 से साभार।

**सन्दर्भ:** [स्रोत:1] Learning and Teaching Early Math — The Learning Trajectories Approach Studies in Mathematical Thinking, by Clements and Sarama. (Publisher: Routledge; year: March 14, 2009)

और चाप DF ऐसी दो छोटी चापों का सम्मिलन ही तो है जो एक-दूसरे पर अतिव्यापन नहीं करती हैं।

जीवा माप की तुलना में किसी कोण का चाप से माप बहुत स्वाभाविक तो नहीं है, लेकिन और गहराई से अध्ययन करने पर हम इसकी सुगढ़ता और लाभों को पहचानने लगेंगे।

\*\*\*

निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि परिभाषाओं का निर्माण, उनकी व्याख्या और उनमें कमियों या अन्तर की पहचान करना, यह सभी सीखने-सिखाने के अवसर हैं, जहाँ शिक्षक और छात्र बेहतर समझ बनाने के लिए मिलकर काम कर सकते हैं। जब हम परिभाषाओं को आजमाते हैं और उनकी अपर्याप्तता को देखते हैं, तब हम मौजूदा परिभाषाओं की क़िफायत और खूबसूरती को पहचानने लगते हैं।

# सामाजिक बदलाव का माध्यम हैं कहानियाँ

महेश झरबड़े

**क**हानी सुनने-सुनाने का अपना एक अलग ही मज़ा है। गम्भीरता, धैर्य, लगन, मानवीकरण, विश्लेषण और समानुभूति जैसे पहलुओं को विकसित करने और फलने-फूलने के जिन मौलिक गुणों की बच्चों या वयस्कों से अपेक्षा की जाती है, कहानी सुनने-सुनाने की प्रक्रिया में वे स्वतः ही फलने-फूलने और विकसित होने लगते हैं।

कहानी का एक पहलू यह भी है कि कहानी सुनाने के बाद उसकी घटनाओं पर ठहरकर बातचीत की जाए और उस पर श्रोताओं की राय जानी जाए। इस दौरान श्रोताओं की तरफ से आई राय या तो उनके निजी अनुभव होते हैं, या कहानी का विश्लेषण, या फिर कहानी के किसी नए पहलू को खोलता एक सवाल।

## कहानी से मुद्दा आधारित चर्चा

यूँ तो कहानियाँ हर किसी को पसन्द आती हैं पर यदि कहानी को आधार बनाकर किसी वर्ग-विशेष के साथ चर्चा करना हो तो उपयुक्त कहानी का चुनाव करना भी अनिवार्य हो जाता है।

मुस्कान संस्था द्वारा जिन बस्तियों

में बच्चों को पढ़ाने का काम किया जाता है, वहाँ बच्चे और युवा साथ-साथ पढ़ते हैं। युवाओं की ज़रूरत, युवा मन, उनसे जुड़े मुद्दे और इस उम्र की चुनौतियों को देखते हुए किशोर-किशोरियों के साथ काम करना अपने आप में एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। जब संस्था स्तर पर युवा केन्द्रित शिक्षण कार्य की योजना बनी, तो कहानी की किताबों के ज़रिए मुद्दे आधारित चर्चा करना ज़्यादा उपयुक्त लगा।

युवाओं की सूची में 12 से 20 आयु के किशोर-किशोरियों के नाम थे। इनमें कुछ स्कूल की दहलीज़ से अनजान और कुछ स्कूल जाने वाले युवा भी शामिल थे। दो अलग पृष्ठभूमि से आए युवा समूहों का एक मंच पर साथ आकर अपनी राय रखना, सुनाई जा रही कहानी पर उनकी राय जानना, उस पर बात करते हुए नए विचारों का निर्माण करना तथा युवाओं की अभिव्यक्ति बढ़ाने में कहानी की भूमिका समझना – इस गतिविधि का प्रमुख उद्देश्य था।

चकमक के जून 2014 अंक में एक कहानी छपी थी – ‘गाँव में कुछ बुरा होने वाला है’। इस कहानी का



उपयोग मैंने अलग-अलग समय पर अलग-अलग उम्र, जाति, समुदाय के लोगों के साथ किया है और हर बार कुछ नया सीखने-समझने को मिला। कहानी के माध्यम से ऐसी कुछ चर्चाएँ निकलीं जिन्होंने बहुत-सी धारणाओं, मान्यताओं और रीति-रिवाजों पर चर्चा के अवसर खोले और कहीं-कहीं कुछ मान्यताओं को तोड़कर नवीन विचारों का सूत्रपात भी किया।

कहानी सुनने के प्रति श्रोताओं की दिलचस्पी कैसे बढ़ाई जाए? क्या सवाल पूछे जाएँ जिससे उनके निजी

अनुभव निकलकर सामने आएँ? जो मुद्दे उभरे, उनपर कैसे चर्चा आगे बढ़े? उनकी समझ कैसे और पुख्ता हो पाए? इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए उक्त कहानी के सन्दर्भ में इस युवा समूह के साथ चर्चाओं के सफर की दास्तान कुछ ऐसी रही।

सुनने-सुनाने का माहौल बनाने और कहानी सुनने की उत्सुकता बढ़ाने की मंशा से कहानी सुनाने से पहले एक साझा सवाल पूछा गया था - “किसी गाँव में एक घटना हुई और लोग अपना गाँव छोड़कर चले गए,

ऐसा क्या हुआ होगा उस गाँव में?” युवाओं की तरफ से जवाब आए-

- “गाँव में बाढ़ आ गई होगी।”
- “सरकार ने कहा होगा कि गाँव खाली कर दो, फैक्ट्री लगेगी।”
- “भूकम्प आ गया होगा।”
- “गाँव में आग लग गई होगी” आदि।

जब युवाओं की तरफ से यह बात आई कि आग लग गई होगी तो एक नया सवाल पूछा गया, “क्या ऐसा हो सकता है कि किसी गाँव के लोग खुद ही अपने घर में आग लगा दें?” इस सवाल ने चर्चा को और गम्भीरता के साथ आगे बढ़ाया। चर्चा के दौरान बात यहाँ आकर रुक गई कि गाँव में ज़रूर भूत-प्रेत का साया होगा। सब इससे सहमत नहीं थे पर ज़्यादातर का मत यही था।

इसके बाद कहानी सुनाई गई। सबको यह जानने की उत्सुकता भी थी कि उन्होंने जो कहा, उनमें से कौन-सी बात सही थी इसीलिए कहानी सुनाने के दौरान शान्ति बनी रही।

## कहानी का सारांश

एक गाँव में बहुत-से परिवारों के बीच एक परिवार में एक बुजुर्ग अम्मा रहती है, एक दिन सुबह-सुबह वह आसमान की तरफ देखकर कहती है, “मुझे ऐसा लग रहा है कि गाँव में कुछ बुरा होने वाला है।” ये बात

सुनकर उसके दो पोते मुस्कुराकर, उसकी बात का मज़ाक बनाकर खेलने चले जाते हैं। उसका एक पोता पूल गेम खेलता है और अन्तिम बाज़ी हार जाता है। ज़्यादातर वह विजयी ही होता था। उसके दोस्त पूछते हैं, “आज कैसे हार गया?” वह बताता है कि “आज सुबह-सुबह दादी ने कहा था कि गाँव में कुछ बुरा होने वाला है। मेरे मन में यही बात चल रही थी, शायद इसीलिए निशाना चूक गया।”

जीता हुआ लड़का घर जाकर अपनी माँ को बताता है कि उसने ज़्यादातर विजयी होने वाले लड़के को हरा दिया है क्योंकि उसकी दादी ने कहा कि आज गाँव में कुछ बुरा होने वाला है, और वह हार गया।

विजयी लड़के की माँ अपने बेटे की जीत से खुश होती है, पर साथ ही अपने बेटे को समझाती है कि बुजुर्गों की बातों का मज़ाक नहीं उड़ाना चाहिए, उनकी बातों में सच्चाई होती है।

कुछ समय बाद विजयी बच्चे की माँ चिकन लेने जाती है और चिकन वाला कहता है, “सुना है गाँव में आज कुछ बुरा होने वाला है।” महिला ‘हाँ’ में जवाब देती है और एक पाउंड चिकन का ऑर्डर देती है और बाद में दो पाउंड चिकन लेकर जाती है, यह कहकर कि “पता नहीं क्या बुरा होने वाला है, पर कुछ बुरा होने से पहले पेट भर चिकन खाया जा सकता है।”

उसके बाद जो भी चिकन की दुकान पर जाता है, ऑर्डर से ज़्यादा चिकन ले जाता है। दुकानदार का सारा चिकन खत्म हो जाता है। वो दूसरी जगह से चिकन मँगाता है और वो भी खत्म हो जाता है। वह सबको बताता है कि गाँव में कुछ बुरा होने वाला है इसलिए अमुक महिला ऑर्डर का दुगना चिकन ले गई है।

कुछ ही समय में खबर गाँव में जंगल की आग की तरह फैल जाती है, और गाँव के लोग तपती दोपहर में गाँव के चौपाल पर इकट्ठे होकर

चर्चा करने लगते हैं। तभी एक इन्सान इशारा करके कहता है, “देखो उस चिड़िया को, इतनी तपती दोपहर में, वो उस खम्भे पर क्यों बैठी है जबकि पास में हरा-भरा पेड़ भी है। इसका क्या मतलब है?” हालाँकि वो चिड़िया रोज़ ही उस खम्भे पर बैठती है पर आज लोगों का ध्यान उस पर जाता है, लोग शंकित हो जाते हैं। तभी एक इन्सान कहता है, “तुम रहो इसी गाँव में और अपनी दुर्दशा देखो, मैं तो चला ये गाँव छोड़कर।”





उसके बाद सभी परिवार एक-एक करके बैलगाड़ी में अपना-अपना सामान लादकर गाँव से निकलने लगते हैं। रास्ते में जाते हुए किसी को खयाल आता है कि हम गाँव में नहीं रहे और कुछ बुरा हुआ तो उसका साया हमारे घरों पर पड़ जाएगा। जब हम या कोई और उस घर में आएगा तो वह साया उसे सताएगा। कोई परेशान न हो इसलिए ज़रूरी है कि घर ही न रहे इसलिए घर में आग लगा दें और यही सोचकर वह अपने घर में आग लगा देता है। फिर बारी-बारी सब लोग अपने घरों को आग के हवाले करने लगते हैं। गाँव के बहुत-से घर धूँ-धूँ कर जलने लगते हैं। तभी बूढ़ी दादी घर से बाहर निकलती है और आसमान की तरफ देखकर कहती है, “मैंने कहा था न, गाँव में आज कुछ बुरा होने वाला है।” और कहानी समाप्त हो जाती है।

### सामाजिक मान्यताओं पर चर्चा

कहानी के समापन के बाद चर्चा शुरू हुई, “क्या सचमुच गाँव में कुछ बुरा होने वाला था?”

एक स्वर में आवाज़ आई, “नहीं।”

“तो ऐसा क्यों हुआ?”

“क्योंकि सब गाँववालों ने बुढ़िया की बात मान ली थी।”

किसी ने कहा, “बुढ़िया ने तो जा-जाकर किसी से नहीं कहा था, वो तो गाँववालों ने ही बात फैला दी।”

“तो क्या गाँववालों ने बात मान ली इसलिए ऐसा हुआ?”

तरवीर ने जोड़ा, “भैया मानने से कुछ नहीं होता, हम भी बहुत सारी बातें मानते हैं पर सिर्फ मानने से ही वो बात सही नहीं हो जाती। गाँव वाले डर गए थे, इसीलिए उन्होंने ऐसा कदम उठाया।”

इस बात पर चर्चा के बाद सबकी सहमति बनी कि हम बहुत बार किसी काम को तभी अंजाम देते हैं जब उसे नहीं करने पर कुछ बुरा होने का डर रहता है। इसमें यह बात भी जोड़ी गई कि डर के साथ-साथ हमारा विश्वास भी होता है कि ऐसा न करने से कुछ अच्छा या बुरा होगा ही होगा, तभी हम ऐसा करते हैं। इस पर समूह में बैठे सभी युवाओं की सहमति थी।

युवाओं की दिलचस्पी को देखते हुए उनसे पूछा गया, “क्या अपनी निजी और सामाजिक ज़िन्दगी में भी ऐसी बातें हैं जिनकी सच्चाई हमें नहीं पता लेकिन उस बात पर हम और हमारा समाज भरोसा करता है?” कुछ सोचते हुए गौतम ने कहा, “हाँ, जैसे बिल्ली रास्ता काट दे तो सफर नहीं करते, अपशकुन होता है।”

इसके बाद तो इस तरह की मान्यताएँ एक-एक कर बाहर आने लगीं। समाज में प्रचलित ये मान्यताएँ सूचीबद्ध हो जाएँ, इस लिहाज़ से युवाओं को अलग-अलग समूहों में बाँटकर मान्यताओं की सूची बनाने को कहा गया।

टीम से जो मान्यताएँ निकलकर आईं, वो निम्नांकित हैं।

- यदि घर के दरवाजे पर चप्पल उल्टी पड़ी है, तो घर में लड़ाई होती है।
- रात में दर्पण दिखने से चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं।
- रात में नमक देने से कर्जा बढ़ता है, लड़ाई होती है।
- रात में सिलाई करने से आँख भी सिलने लगती है।
- गर्भवती महिला भटा (बैंगन) खाती है तो पैदा होने वाला बच्चा काला होता है।
- बिल्ली के घूरने से अशुभ घटना घटती है।

- जाते समय कोई चीक दे तो जो काम करने जाते हैं, वो नहीं होता।
- चंगोटे खेलने से कमाई नहीं होती है।
- चपेटे खेलने से बारिश होती है।
- बाल खोलने से भूत लगता है।
- रात को झाड़ू नहीं लगाते, लक्ष्मी नहीं आती, निकल जाती है।
- घर की चौखट पर बैठने से कर्जा बढ़ता है।
- हथेली खुजलाती है तो पैसे आते हैं।
- खाली झूला झुलाने से बच्चे का पेट दुखता है।
- तकिए पर बैठने से सर दुखता है।
- कोयले से लिखने से कर्जा बढ़ता है।



- हथेली पर नमक लेने से कर्जा बढ़ता है।
- हल्दी लगाकर रात में घूमने से भूत लग जाता है।
- जिसकी जीभ में तिल हो, उसकी बात सच होती है। उसको काली जुबान का कहते हैं।
- सौ पाप करने से बिच्छू काटता है।
- खाली डिब्बा ले जाना अशुभ माना जाता है।
- कौवे के चिल्लाने से मेहमान आते हैं।
- रात में कुत्ता रोता है, तो किसी की मौत होती है।
- शनिवार के दिन तेल का गिरना शुभ माना जाता है।
- घर के बाहर गुलमोहर का पेड़ हो तो उस घर में लड़ाई चलती रहती है।
- फूटा दर्पण देखने से किस्मत फूट जाती है।
- विधवा औरत बच्चों को हाथ लगाए तो बच्चे बीमार हो जाते हैं।
- जिस पीपल के पेड़ में कील गड़ी हो, उसमें भूत रहते हैं।
- पंचक के दिनों में कोई मरता है तो साथ में पाँच लोगों को लेकर जाता है।
- जिसके कटे हुए बाल फेंक दिए जाएँ, वह पागल हो जाता है।
- किसी की इच्छा पूरी नहीं हुई और वह मर जाए तो उसकी आत्मा भटकती रहती है।
- काले रंग के कपड़े अशुभ होते हैं।

- कोई शुभ काम करना हो तो तीन लोग नहीं होना चाहिए। 'तीन तिगाड़ा काम बिगाड़ा' हो जाता है इत्यादि।

इस तरह मान्यताओं की एक लम्बी फेहरिस्त समूह से निकलकर आई। इन मान्यताओं में पेड़-पौधों से जुड़ी, सप्ताह के किसी खास दिन से जुड़ी, लेन-देन से जुड़ी, खाने-पीने से जुड़ी और इन्सानों के व्यवहारों से जुड़ी कुछ मान्यताएँ स्पष्ट रूप से समझ आ रही थीं। जाने-अनजाने ये सभी मान्यताएँ हरेक समाज के सामाजिक ढाँचे में विद्यमान हैं और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी-न-किसी को प्रभावित जरूर करती हैं।

हमारी बोलचाल में तो आए दिन कुछ-न-कुछ सुनने को मिल ही जाता है। और कई बार हमारे व्यवहार में यह दिख भी जाता है।

### मान्यताएँ: सच या भ्रम?

मान्यताओं में कितनी सच्चाई होती है? ये जिस स्वरूप में शुरू होती हैं, पलती-बढ़ती हैं, उनका स्वरूप वही रहता है या बदल जाता है? यह सब समझने के लिए जरूरी था कि कुछ चुनी हुई मान्यताओं पर रुककर चर्चा की जाए। इस सोच को ध्यान में रखकर 'रात में कुत्ता रोता है तो किसी की मौत होती है' मान्यता चुनी गई और उस पर तार्किकता के साथ बात करना तय हुआ। मान्यताओं से जुड़ी बातें युवा समझ पाएँ और

ज़रूरत पड़ने पर किसी और को अपने अन्दाज़ में समझा भी पाएँ, इस बात को ध्यान में रखते हुए कुछ सवाल-जवाब, कुछ उदाहरण व गतिविधियों के माध्यम से चर्चाएँ हुईं।

“ये मान्यता कितनी पुरानी है? कितने साल पहले यह बात कही गई होगी?” इन सवालों से चर्चा शुरू हुई।

“मैंने तो अपने पापा से सुनी थी, पापा ने उनके पापा से सुनी होगी और उनके पापा ने उनके पापा से।” चर्चा और आपसी सवाल-जवाब से यह समझ बन रही थी कि आज जिन बातों पर हमारा पक्का भरोसा है,

दरअसल वो बातें कम-से-कम कई सौ साल या उससे भी ज़्यादा पुरानी हैं।

फिर एक गतिविधि की गई जिसका नाम था ‘काना-फूसी गतिविधि’। कागज़ पर लिखा गया, ‘आज से डरना बन्द है’ जिसे एक युवा को पढ़वाया। उसने जो पढ़ा, वो अपने साथी के कान में कहा। उसने अगले के कान में और अगले ने अगले के कान में...अन्तिम व्यक्ति ने ज़ोर-से कहा, “आज से डर भाग गया, बन्दर हो गया है।”

इस पर चर्चा से यह समझ बनी कि बहुत बार ऐसा भी होता है कि



हम किसी बात को ठीक-से सुन नहीं पाते और बात का मतलब बदल जाता है। इस पर भी चर्चा हुई कि जो बात थोड़ी देर पहले कही गई है, वो पहले इन्सान से 20वें इन्सान तक पहुँचते-पहुँचते अपने वास्तविक रूप से काफी भिन्न हो गई है। ठीक इसी तरह मान्यताएँ भी तो कई लोगों से होते हुए हम तक पहुँची हैं, तो क्या यहाँ भी मुख्य बात के बदलने की सम्भावना नहीं है?

युवाओं की तरफ से आए जवाब तार्किक थे इसलिए इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए उनसे चर्चा हुई। “इसका मतलब जो बात आज सही है, वो कल बदल सकती है, परसों कुछ और हो सकती है?”

“हाँ,” सबने एक साथ कहा। “तो क्या कई सौ साल पहले कही गई कोई बात, आज तक वैसी-की-वैसी रह सकती है?”

समूह में शान्ति थी और मन में विचारों का संघर्ष। “सोचो,” कहकर सवाल यहीं छोड़ दिया गया।

कई सौ साल वाली बात और काना-फूसी गतिविधि का ध्यान दिलाकर हम अपनी चुनी हुई मान्यता ‘रात में कुत्ता रोता है तो किसी की मौत होती है’ पर वापिस लौट आए। सबकी सहमति से बात आगे बढ़ी।

“कुत्ते के रोने के क्या कारण हो सकते हैं?”

जवाब आए...

“हो सकता है कुत्ता बीमार हो, उसे कोई तकलीफ हो।”

“कुत्ते को कहीं चोट लगी हो।”

“उसे अपना कोई साथी याद आ रहा हो।”

“उसे भूख लगी हो।”

“उसे ठण्ड लग रही हो, गर्मी या बारिश से वो परेशान हो।”

“कुत्ता अपनी परेशानी के कारण रोए तो दूसरा कोई व्यक्ति कैसे मर सकता है?”

इस पर एक युवा साथी ने बताया, “हमारे गाँव से एक बार एक भैया बाइक से निकले थे और ट्रक से उनकी टक्कर हो गई थी और वे मर गए। गाँव के लोग कहते हैं कि उस दिन भी कुत्ता रोया था।”

जवाब बाकी युवाओं ने दिया, “हो सकता है ट्रक वाला स्पीड में हो या बाइक भी स्पीड में हो।”

“गाड़ी का ब्रेक भी कमज़ोर हो सकता है। ध्यान कहीं और होगा इसलिए भी दुर्घटना हो सकती है।”

“रास्ते में कहीं गड़ढा हो सकता है जिससे गाड़ी बहक गई हो।”

“हो सकता है, दोनों में से कोई नशे में हो और गाड़ी सम्भाल नहीं पाया हो।”

अन्य कारण भी हो सकते हैं, इस पर युवा साथियों की सहमति थी।

एक अन्य युवा ने जोड़ा, “भैया, यदि कुत्तों के रोने से लोग मरते हैं

तो ट्रेन-दुर्घटना के समय कितने कुत्ते रोते होंगे?” एक अन्य साथी ने कहा, “और जब सब कुत्ते मुँह ऊपर करके रोते होंगे, तब हवाई दुर्घटना होती है क्या?” दूसरे ने कहा, “और यदि किसी गाँव/शहर में कुत्ते ही नहीं होंगे तो क्या वहाँ कभी भी कोई नहीं मरेगा?” एक अन्य युवा ने एक नई बात कही, “यदि कुत्तों के रोने से मरना तय होता तो फिर तो हर गाँव में कुत्ते का एक मन्दिर होता और उसकी पूजा भी होती, लेकिन ऐसा नहीं होता क्योंकि यह बात ही झूठ है।”

“हाँ, हमको भी यही लगता है,” बाकी साथियों ने भी सहमति जताई।

इस तरह ‘रात में कुत्ता रोता है तो किसी की मौत होती है’ वाली मान्यता पर चर्चा के दौरान युवाओं के विचारों में काफी बदलाव आता दिख रहा था।

## चर्चाओं ने बदला नज़रिया

चर्चाएँ बढ़ेंगी और युवाओं का

नज़रिया थोड़ा बदलेगा, ये तो मेरे मन में था पर बात को इस नज़रिए से भी देखा जा सकता है, यह मैंने बिलकुल नहीं सोचा था।

इस पूरी बातचीत से युवाओं के मन में मान्यताओं को लेकर जो पक्कापन या डर था, वो खत्म हो गया है, यह तो हम नहीं कह सकते, पर उस पर पड़ी धूल हटाने में यह चर्चा बहुत कारगर रही है। मान्यताओं पर चर्चा करने के और भी रास्ते हो सकते हैं परन्तु इन पर चर्चा के पहले, कहानी से जो माहौल बनता है, उससे बात करने के रास्ते बहुत आसान हो जाते हैं। दूसरा, यदि कहानी पढ़कर यूँ ही छोड़ दी जाए तो अन्य सब कहानियों की तरह ही, यह भी एक कहानी ही रह जाती है। पर यदि इस पर ठहरकर चर्चा की जाए तो यह विश्वास के कई मुद्दों को टटोलने, उन पर बहस करने और रुढ़िवादी विचारों को झकझोरने का एक बहुत ही सशक्त माध्यम बन जाती है।

**महेश झरबड़े:** पिछले 11 साल, *मुस्कान* संस्था के साथ स्कूली और आदिवासी बच्चों की शिक्षा से जुड़े विभिन्न मुद्दों पर काम किया है। वर्तमान में *सिनर्जी* संस्थान, हरदा के साथ जुड़कर ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा और युवाओं के मुद्दों को समझ रहे हैं।

**सभी चित्र: पूजा के. मैनन:** वर्तमान में कम्प्यूनिकेशन डिज़ाइन की छात्रा हैं। जन्म पलक्कड़, केरल में हुआ लेकिन एक जगह से दूसरी जगह यात्रा करने के कारण बहुत-से नए लोगों से मिलना हुआ। चूँकि वे अन्यथा बातचीत करने में झिझकती थीं, स्कैचिंग ने उनके विचारों को सम्प्रेषित करने और टिप्पणियों का दस्तावेज़करण करने में एक माध्यम का काम किया। धीरे-धीरे रेखाचित्र कहानियों में बदल गए जिन्होंने उन्हें जीवन और लोगों को समझने और खुद को व्यक्त करने में मदद की।



# कुछ पिटे हुए अनुभव

सुशील जोशी

शिक्षक के हाथों हिंसा का शिकार हुए बच्चे अक्सर भावनात्मक और व्यवहारिक समस्याओं से ताउम्र जूझते हैं। मानसिक तनाव उनके संज्ञानात्मक कौशल और अकादमिक प्रदर्शन पर भी नकारात्मक प्रभाव डालता है। स्कूलों में शारीरिक दण्ड और अपमान व्यापक रूप से होता आया है, और आज भी यह तमाम नियम-कानूनों के बावजूद भारत समेत कई देशों में स्कूली शिक्षा का अभिन्न हिस्सा है। लेखक ने इन्हीं मुद्दों पर अपने अनुभव साझा किए हैं जो तीन दशक बाद आज भी उतने ही मौजूद हैं।

**अ**भी-अभी मेरा सामना ऐसे बच्चे से हुआ जिसकी स्कूल में जमकर पिटाई हुई थी। वैसे यह कोई पहली बार सामना नहीं हुआ था। मैं पहले भी ऐसे बच्चों के सम्पर्क में रहा हूँ। और मात्र सम्पर्क की बात क्यों करूँ, मेरी खुद की भी स्कूल में पिटाई हुई है। और ईमानदारी की बात तो यह है कि मैंने अपने छोटे भाई की बहुत पिटाई की। आज मैं उसके लिए बहुत शर्मिन्दा हूँ और आगे जो भी व्यक्त करूँगा, वह उसी शर्मिन्दगी को कम करने की और अपने छोटे भाई से क्षमायाचना की कोशिश होगी। तो मेरा सामना उस बच्चे से हुआ। गुड्डू! वैसे उसका नाम पंकज है। मैं जिस दिन उससे मिला - जनवरी में - उससे कछ दिन पहले, उसकी इतनी पिटाई हुई थी कि उसके गाल नीले पड़ गए थे। वैसे

इससे भी भयानक पिटाई स्कूलों में होती है।

मैंने गुड्डू के नीले गाल नहीं देखे। उसकी माँ से और अन्य लोगों से ही सुना। पर देखने की आवश्यकता नहीं है।

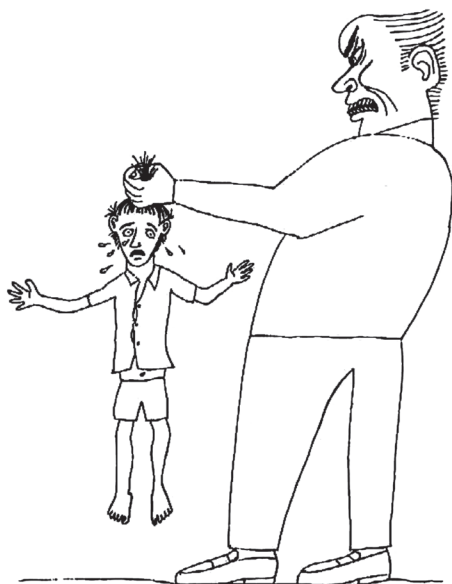
एक बच्चे के लाल-लाल गालों को नीला होते समझ पाना कोई मुश्किल बात नहीं है। और जब ऐसे दृश्य यदा-कदा देखने को मिलें तो ऐसे दृश्य की कल्पना करना बिलकुल मुश्किल नहीं है। गुड्डू से मैंने थोड़ी देर गप्प मारी, उसकी माँ से बातें कीं। मैं पहली बार अन्दर से हिल गया था। मुझे तब से रह-रहकर वह सारी मार याद आती रही जो मैंने खाई और अपने छोटे भाई को मारी।

इस बात पर तो बात की जा सकती है कि स्कूल में मार क्यों

पड़ती है। इसके जितने समाज-आधारित कारण/बहाने हैं, उन पर बात करना अपेक्षाकृत रूप से आसान है। पर मैं व्यक्तिगत बात ज्यादा करना चाहूँगा, जो मेरी पीड़ा है और जिसे मुझे आपकी पीड़ा बनाना है।

स्कूल में पहली तरह की पिटाई होती है कि मुझे कुछ आया नहीं, कोई सवाल, पहाड़ा, शब्दार्थ वगैरह और मास्टर ने हाथ उठाया और मार दिया। यह आम धारणा है कि स्कूल में पिटाई का प्रमुख (या एकमात्र) कारण यही होता है और यही पिटाई का एक मात्र स्वरूप। पर यह बिलकुल गलत है। यह तो पिटाई का एक बहुत ही नगण्य-सा हिस्सा है। और मैं कहना चाहूँगा कि यह सबसे कम अपमानजनक है।

मेरे साथ ऐसा हुआ कि मेरे पिता सरकारी नौकर थे। दौरे पर जाते थे। मैं उनके साथ खजुराहो चला गया। दो-चार दिन स्कूल से नदारद रहा और जो कुछ सार्थक-निरर्थक पढ़ा था, भूल गया। जब कक्षा में पहुँचा, तो मास्टर ने पूछा कि सातवीं साध्य (प्रमेय) किसको आती है। जैसे हमेशा होता है, किसी ने हाथ नहीं उठाया। इतनी हिम्मत और आत्मविश्वास कहाँ होता है कि खुद शेर की माँद में जाएँ। सबको मालूम है कि बाद में जिसका दुर्भाग्य होगा, शेर उसे खुद



ही चुन लेगा। सो शेर ने चुन लिया मुझे। मुझे थोड़ा-थोड़ा याद आ रहा था कि सातवीं साध्य क्या है। मुझे बोर्ड पर खड़ा कर दिया।

अब मैंने ज्यामिति के नियम के अनुसार कुछ आड़ी-तिरछी रेखाएँ बोर्ड पर खींचीं और कुछ उलजलूल बातें 'मान लो' का आग्रह किया। यह दो-एक मिनट चलता रहा। मेरा चेहरा तो बोर्ड की तरफ था, इसलिए मुझे कुछ नहीं मालूम। परन्तु सारी कक्षा को मालूम था कि मास्टर के हाथ की वक्र रेखा की छाप अब कहाँ बनने वाली है। बस इसी वक्त वह हादसा हुआ। मुझे अपने बालों पर तनाव महसूस हुआ और मैं तैरने लगा हवा में। फिर धम्म-से गिरा। उसके बाद मेरे

अन्दर की पशु-बुद्धि ने मास्टर का चेहरा देखकर भांप लिया कि भागना चाहिए। और मैं भागा। आखिर उन्होंने पकड़कर मुझे दो झापड़ लगा ही दिए। वापिस खींचकर कक्षा की कर्मभूमि में लाए और सातवीं साध्य पढ़ाई, फिर चैन की साँस ली। पर मुझे शारीरिक चोट के सिवा कुछ नहीं लगा। मुझे शर्म नहीं आई। मैंने अपमानित महसूस नहीं किया।

मुझे आज तक यह घटना याद है पर कभी भी उन मास्टर के प्रति गुस्सा नहीं रहा। अन्य तरह की पिटाइयों का मुझे उस समय भी गुस्सा रहा और आज भी है। उस समय लगता था कि ये मास्टर को बाद में पत्थर मारूँगा। मास्टर लोग कृपया अन्यथा न लें। हो सकता है तब मेरे भाई को भी ऐसा ही लगा हो। पर इन सातवीं साध्य वाले मास्टर के प्रति मुझे गुस्सा नहीं है। आज मुझे लगता है कि उनके प्रति मुझे गुस्सा नहीं है।

उनके चेहरे पर कुछ था। मुझे सातवीं साध्य सिखा पाने में उनकी असफलता या मेरे अज्ञान पर उनकी हैरानी या और किसी कारण से वे खुद बहुत-बहुत गुस्सा और परेशान थे।

मुझे मारने के समय, मुझे लगा कि वे भी एक पीड़ा में से गुज़रे। वह एक क्षणिक, तीव्र गुस्सा था जिसकी परिणति उस थपपड़ में हुई। और उसी के साथ वह क्षण बीत गया। वह क्षण

बीतने के बाद उन्होंने फिर कोशिश की। इसमें मुझे नीचा दिखाने की कोई साजिश नहीं थी। इससे ऐसा मत समझिए कि मैं इस तरह से मारने का समर्थक हूँ। पर जब आप मेरे बाद के अनुभव सुनेंगे, तो कहेंगे कि 'साध्य' वाले मास्टर ने तो क्या मारा।

\* \* \*

मेरा एक दोस्त है नरेन्द्र। उसने मुझे पिपरिया के उसके स्कूल की आपबीती बताई। उसे सुनकर इस बात से विश्वास उठ जाता है कि स्कूलों में पिटाई इसलिए होती है ताकि बच्चे ज़्यादा अच्छी तरह सीख सकें। नरेन्द्र से जब भी उसके बचपन की बात हुई, उसने यह किस्सा ज़रूर सुनाया। किस कदर यह उसके ज़हन पर छाया होगा। उसके बचपन को किस तरह इस घटना ने प्रभावित किया होगा। बात किसी भी सन्दर्भ में निकले, नरेन्द्र यह किस्सा ज़रूर सुनाता है। उसके एक मास्टर थे। नरेन्द्र ऐसे नहीं बताता। नरेन्द्र कहता है - "मेरा एक मास्टर था"। खैर।

वे क्या करते थे कि जिस बच्चे को उन्हें प्रताड़ित करना होता, उसे अपने पास बुला लेते और उसकी बाँह के किसी एक स्थान पर चिमटी से (उंगली की चिकोटी) से पकड़ लेते और पन्द्रह-पन्द्रह मिनटों तक धीरे-धीरे (हौले-हौले) सहलाते रहते। और साथ ही बड़ी शान्ति से, परम-सन्तोष के साथ उस बच्चे से व अन्य बच्चों से बात करते जाते। कभी-कभी



मुस्कराकर भी। और बच्चा लगातार चीखता रहता, घुटी-घुटी-सी चीख। बच्चे की पेशाब निकल जाती, तो मास्टर मुस्कराकर उस पर भी अपनी भद्दी टिप्पणी करते।

बच्चा सबके सामने, अपने सब साथियों, हम-उम्त्रों के सामने इस तरह प्रताड़ित हो और मास्टर लगातार उसकी इस प्रताड़ना पर व्यंग्य करके उनको हँसाने की कोशिश करे, यह कितना अपमानजनक हो सकता है, इसकी कल्पना करना मुझे दुर्भाग्यपूर्ण लगता है। ऐसे दृश्यों, ऐसे अपमानों की कल्पना करने को कहना ही मैं यातना मानता हूँ। मैंने तीन-चार बार नरेन्द्र से पूरा किस्सा सुना है और हर बार मेरी इच्छा हुई है कि उसे चुप रहने को कहूँ। पर हर बार मुझे

यह भी लगा कि उस समय तो हम पिटाई से इतने शर्मिन्दा होते थे, इतने अपमानित होते थे कि किसी से बात तक नहीं करते थे, अब कम-से-कम मौका है कि बात करें।

मुझे लगता है कि नरेन्द्र एक बार और मुझे वह बात सुनाएगा तो भी मैं मना नहीं करूँगा। ये मास्टर जब बच्चे का हाथ छोड़ते थे, तो वह स्थान नीला पड़ चुका होता था। मुझे आशा है कि नरेन्द्र के समान ही अन्य बच्चों में भी यह नीलापन मन में उतर गया होगा। क्योंकि यह पीड़ा ही तो

हमारी पूंजी है। बहरहाल, बात यह है कि क्या इस प्रकार की प्रताड़ना से सीखने का कोई सिद्धान्त बनता है?

नरेन्द्र का उदाहरण उस श्रेणी में आता है, मैं जिसे द्वितीय श्रेणी कहता हूँ। परपीड़न की श्रेणी। शिक्षक लगातार पूरी प्रक्रिया के दौरान सन्तुष्टि महसूस करता है। उसमें बच्चे के प्रति कोई जिम्मेदारी नहीं होती, उसमें खुद की असहायता का भाव नहीं होता, उसमें कुछ सिखाने की तमन्ना नहीं होती। उसमें कुछ असहाय बच्चों को, आत्म सन्तोष के लिए, दुख देने की बात होती है।

आप भी अपनी-अपनी दास्ताँ सुनाइए कि कितनी बार ऐसी स्थितियों में से गुज़रे हैं। ऐसे मास्टर पर गुस्सा आता है - साथ-ही-साथ

खुद के छोटेपन का, उसके पंजे में कैद होने का एहसास आता है। अधिकांश बार यह स्थाई प्रभाव होता है। अपने कमज़ोर और दूसरे की दया पर होने का स्थाई एहसास। शायद यही इस मार का मकसद भी हो। इसीलिए तो जितना नरेन्द्र तड़पता था, जितना असहायता से छटपटाता था, मास्टर का जोश और सन्तोष बढ़ता था। यह है परपीड़नवादी तरीका या मनोवृत्ति जिसे सेडिज़्म कहते हैं। इसे साद नामक मनोवैज्ञानिक ने प्रतिपादित किया था। इस फ्रांसिसी मनोवैज्ञानिक की मान्यता थी कि दूसरों को पीड़ा पहुँचाने से आनन्द मिलता है।

\* \* \*

और मैंने कई-कई घटनाएँ सुनी हैं जब ऐसी पिटाई मात्र इसलिए हुई है कि बच्चे ने पेशाब की छुट्टी माँगी। पिटाई होते-होते जब पेशाब छूट गई तो छुट्टी का कारण ही समाप्त हो गया। इसमें क्या सिखाया जा रहा था? इसके कई घृणित रूप हैं।

गंदे, एकदम गंदे। कई बार यह यौन उत्पीड़न के रूप में भी सामने आता है। मैंने एक गाँव में लड़कियों को इसे भोगते देखा है। उन्हें स्तनों से पकड़कर ऊपर उठा देना और पटक देना, स्तनों पर चिमटी काटना जैसे घृणास्पद कर्मों को सहना पड़ता था। और शर्मिन्दगी इस कदर कि किससे कहें। मेरे कान को धीरे-धीरे मसला जाता था। और मूल्य यह कि

मैं घर पर कहूँ, तो वे इसे मेरी गलती मानेंगे - ज़रूर मैंने कुछ किया होगा। मुझे मुर्गा बना दिया जाता था। दोनों कान पकड़कर। और ऊपर एक चोंक, नहीं तो डस्टर, नहीं तो किताब रख दी जाती थी। पूरी कक्षा की तरफ मुँह करके मुर्गा बनना होता था। पूरे समय। और किताब गिरी, तो मुक्का मारते थे मास्टर। जब सज़ा खत्म होती थी तो पैर काँप रहे होते थे, चेहरा लाल हो जाता था, आँखों में जलन होती थी। चलना मुश्किल हो जाता था। मैं क्या सीख रहा था? और यदि यहीं सन्तोष नहीं हुआ, तो अगले पीरियड के शिक्षक को बता दिया जाता था कि मुझे मुर्गा बने रहना है। हरेक क्षण मन में गुस्से और अपमान के सिवा कुछ नहीं होता था।

मैंने मुर्गा बनकर कभी नहीं सोचा कि मुझे ज़्यादा पढ़ाई करना चाहिए। मैंने सिर्फ यह सोचा कि मेरी बेइज़्जती हुई है, और बदला लेने का मेरे पास कोई तरीका नहीं है। मेरी उंगलियों में पेंसिलें फँसाई गईं, मेरी उंगलियों के जोड़ों पर स्केल और डस्टर से मारा गया, मेरी उंगलियों के बीच पेंसिल फँसाकर, उन्हें पकड़कर दबाया गया, मेरे सिर पर मारा गया।

आज मुझे उन सबके कारण बिलकुल पता नहीं, बस मास्टर की सूरत और अपना दर्द याद है। हो सकता है गांधीजी की आत्मकथा या जन्म तिथि न याद होने पर मार पड़ी हो। और आज याद आता है कि एक

विद्यार्थी को मार पड़ते समय बाकी हँसते न भी हों, तो भी खुद के भाग्य पर खुश ज़रूर हो लेते थे। कई बार तो मास्टर खुद कोशिश करते थे कि जिस बच्चे की पिटाई हो रही है, उसे व्यंग्य का, मखौल का पात्र बनाया जाए। उसकी मूर्खता का बखान किया जाए या यहाँ तक कि दूसरे बच्चों से करवाया जाए। उसका एक अलग ही स्वरूप है जिसे मैं तीसरी श्रेणी में रखता हूँ।

\* \* \*

हमारे एक मास्टर थे चौथी कक्षा में। उनका तरीका अद्भुत था। वे खुद हमें नहीं मारते थे। उन्होंने यह काम कक्षा के मॉनीटर को दिया हुआ था। अक्सर वे कक्षा में नहीं आते थे। मॉनीटर को कह देते थे कि कोई भी लड़का बोले, तो मुझे आकर बताना। वे वहीं से सज़ा सुनाया करते थे जिन्हें मॉनीटर क्रियान्वित करता था। यह इतना गंदा होता था। अपने साथी के साथ इतना गंदा रिश्ता। वह जाता और वापिस आकर बोलता कि तुम्हें बैंच पर खड़ा होने को कहा है। यदि खड़े नहीं हुए तो मास्टर से शिकायत करता था। फिर वहाँ पेशी होती थी। वहाँ फिर पिटाई होती थी। वह मास्टर खुद नहीं करते थे। मॉनीटर को कहते थे कि दो थप्पड़ लगा या चार मुक्के मार या पेंसिल उंगली में फँसा वगैरह। और मॉनीटर तुरन्त पूरे जोश से ऐसा करता था। बाकी के शिक्षक भी वहाँ होते। कभी-कभी हँसते। कभी-

कभी मॉनीटर को कहते कि ठीक-से नहीं मारा। यह तरीका बहुत घृणास्पद है।

मेरे मन में कई बार आया कि अगले साल मैं मॉनीटर बनूँगा। और ज़ोर-से मारूँगा, साले को। पर आज मुझे दुख है कि मैंने ऐसा सोचा। पर उस समय मुक्के खाते हुए, रोते हुए, हमेशा लगता था कि मॉनीटर बनना है। हालाँकि, हम बाहर आकर हिसाब चुकता कर देते थे पर वह हिसाब सिर्फ शारीरिक चोट का होता था। उस अपमान का बदला तो बाहर मारने से नहीं चुकाया जा सकता। आज समझ में आता है कि वहशीपन के शिकार होने से अपमान नहीं होता और वहशीपन का बदला वहशीपन से नहीं चुकाया जा सकता। पर कितना अद्भुत तरीका है कि छात्रों को एक-दूसरे से भिड़ा दो और कितने गंदे दिमाग की उपज होगी यह। मुझे अब उस मॉनीटर पर दया आती है। यह उज्जैन के जैन स्कूल का किस्सा है।

इसी श्रेणी के एक और तरीके को भी मैंने भुगता है। वह रीवा में हुआ था मेरे साथ या हमारे साथ। इस तरीके में बदला चुकाने के लिए मॉनीटर बनना ज़रूरी नहीं था। और यह उससे ज़्यादा गंदा था। हमारे मास्टर शब्दार्थ पूछ रहे थे। लाइन से एक-एक से पूछते थे। जितने लड़कों को नहीं आया, वे खड़े रहते थे। जिस लड़के को आ गया, वह इन सब लड़कों को एक मुक्का मारता था।



मुक्का मारने से पहले मास्टर उसको बता देते थे कि ज़ोर-से मारना, नहीं तो मैं तुमको उतने ही मुक्के मारकर समझाऊँगा कि कैसे मारना है। हमेशा ऐसा होता था कि मारने वाला ज़ोर-से मारने की अदा से धीरे मारने की कोशिश करता। कई बार धोखा देने में सफल हो जाता। जब सफल नहीं हो पाता, तो फालतू की मार खाता। कैसी दुविधा है - और कैसा भयानक तरीका है। और हम धीरे इसलिए नहीं मारते थे कि हमें अपने साथी छात्रों पर कोई दया होती थी। हम तो धीरे इसलिए मारते थे कि हमें मालूम था कि हमें भी सारे शब्दों के अर्थ पता नहीं हैं।

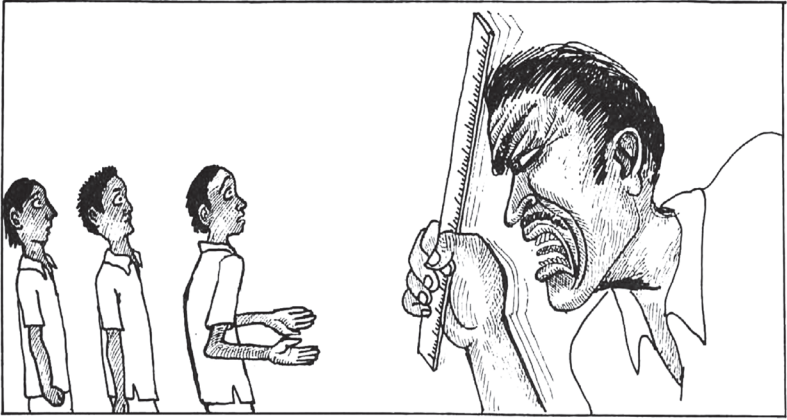
जो शिक्षा व्यवस्था सारे बच्चों को सब कुछ सिखा नहीं सकती, वह सिर्फ सबको बराबर सज़ा का ही तो प्रबन्ध कर सकती है। पर हमें घृणा होती थी। मुझे याद है कि मेरे सहित कई लड़कों ने अन्य को मारने से इन्कार करके मार खाई है। यह अमानवीकरण की प्रक्रिया, यह वहशीपन की प्रक्रिया हमारे अन्दर किसी-न-किसी चीज़ का तो कत्ल कर रही थी। कई बार हमने एक-दूसरे को शब्दार्थ बताए भी, चुपके-चुपके। उसकी पिटाई भी खाई। मुझे

याद है, हममें से हरेक का मार खाने और मारने, दोनों का मौका आया था। मझे याद है जब हम में से किसी को मारना होता था, तो हम झिझकते थे। पर अन्ततः खुद को मार पड़ने के डर से हाथ उठाना ही पड़ा।

मैंने थोड़ी देर पहले लिखा कि हम धीरे इसलिए मारते थे क्योंकि हमें अपनी बारी का डर होता था। मुझे अब लग रहा है कि मैंने गलत लिखा। हम कभी भी दूसरों को, खासकर अपने साथियों को मारने के लिए तैयार नहीं हो सकते थे। पर यह तरीका कितना दर्दनाक है। किसने ईजाद किया और शिक्षा के किस सिद्धान्त के तहत? और क्या सिखाने के लिए? यही सहयोग की भावना और सहकारिता का प्रतिबिम्ब है?

मैं पलिया पिपरिया गाँव के कितने ही युवकों को जानता हूँ जिन्होंने





पिटाई के कारण स्कूल छोड़ दिया। एक लड़के को मास्टर ने इतना मारा कि उसका कान उखड़ गया। जब उसके बाप ने स्कूल पहुँचकर शिकायत की तो उसी मास्टर ने गाली-गलौच की और सरपंच ने जुर्माना किया। इसके पीछे ज़रूर यह बात भी थी कि वह बच्चा बसोड़ था और मास्टर-सरपंच, दोनों ब्राह्मण। तो नीची जाति वाले ने कैसे उच्चतम जाति वाले पर टिप्पणी की, यह भी विचारणीय मुद्दा था।

\* \* \*

ये सारी बातें लिखते-लिखते मैंने अपने एक और मित्र कमल सिंह से बात की। उससे मैंने पूछा था कि क्या कभी स्कूल में पिटाई हुई है। उसकी बातें सुनकर मुझे जहाँ एक ओर गहरा दुख हुआ, वहीं दूसरी ओर एक सन्तोष भी मिला कि उन सारी

भावनाओं में मैं अकेला नहीं हूँ। उसने बताया कि जब उसके मास्टर ने उसे 'बेमतलब' मारा तो वह स्कूल के दरवाज़े पर ईट लेकर खड़ा था कि आज निकलने दो। वह तो मास्टर का भाग्य है कि वह उस दिन थोड़ी देर से बाहर निकला। इतनी देर में कमल का धैर्य टूट गया। तो यह गुस्सा मेरे अकेले का नहीं है।

दूसरी बात जो उसने बताई, वह और भी दर्दनाक थी। वह जिस स्कूल में पढ़ता था, वह सहशिक्षा स्कूल था। जब लड़कों की पिटाई होती तो उनका हाथ टेबिल पर रखवाकर रूल से उंगलियों के जोड़ों पर मारा जाता। पर जब लड़कियों की पिटाई करनी होती तो मास्टर उनको अपने पास बुला लेता और शरीर के विभिन्न अंगों पर चिमटियाँ काटना, हाथ लगाना आदि जैसी क्रियाओं से उनको

उत्पीड़ित करता। उस समय भी कमल समझ सकता था कि इनका सम्बन्ध यौन से है।

शायद यह शब्द उसे तब मालूम न रहा हो।

\* \* \*

मेरे कम-से-कम दो अनुभव ऐसे भी हैं जिनमें हम लोगों ने संगठित रूप से इस सबका विरोध किया। पर वह फिर कभी सही। वैसे इनमें से एक घटना मैंने गुड्डू को लिख भेजी है। मेरा एक अनुभव है कि कैसे एक गाँव के प्रायमरी के बच्चों ने संगठित रूप से इसका विरोध किया। पर यहाँ मैं उसमें जाना नहीं चाहता। यहाँ तो मैं सिर्फ यही बात करना चाहता हूँ कि हम सबकी पिटाई हुई है, हम सबको

गुस्सा आया है, हम सबने अपमानित महसूस किया है। पर अपना मौका आने पर हम नहीं चूकते। क्यों?

मैं जानता हूँ कि इस सबके पीछे सामाजिक, आर्थिक, भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक कारण व ग्रन्थियाँ हैं। पर फिर भी इसे स्वीकार करें क्या? ऐसी सैद्धान्तिक बहस से तो हर अपराधी को मुक्त किया जा सकता है। मैं उस सब पचड़े में नहीं पडूँगा। मैं तो आपसे व्यक्तिगत सवाल करूँगा - क्या आप अपने विद्यार्थियों को मारते रहेंगे या मारना बन्द करेंगे? और इसका जवाब समाज से नहीं, आप से चाहूँगा। और 'मैं नहीं चाहता लेकिन...'; किन्तु-परन्तु वाले जवाब न दें कृपया।



**सुशील जोशी:** एकलव्य द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

**सभी चित्र: कैरन हैडॉक:** पिछले पच्चीस सालों से भारत में शिक्षाविद, चित्रकार और शिक्षक के रूप में काम कर रही हैं। बहुत-सी चित्रकथाओं, पाठ्यपुस्तकों और अन्य पठन सामग्रियों का सृजन किया है और उनमें चित्र बनाए हैं।

यह लेख होशंगाबाद विज्ञान बुलेटिन के अंक 26, वर्ष 1988 में प्रकाशित हुआ था।

# दुनिया से खत्म हो जाएँगी 2500 भाषाएँ

संध्या रायचौधरी

**भा**षा का विलुप्त होना मनुष्य जाति के लिए बेहद चिन्ताजनक बात है। जिस तरह मछली जल में रहती है, उसी तरह मनुष्य भाषा में। लेकिन भाषाओं की मौत फटाफट हो रही है। बीती सदी में कोई ऐसा दशक नहीं बीता, जिसमें किसी भाषा का अन्त न हुआ हो। इसी दशक में अण्डमान की एक भाषा 'बो' का अन्त, इसे बोलने वाली एकमात्र महिला बोआ सीनियर की मृत्यु के साथ हुआ। इसके कुछ ही दिन बाद यूनेस्को ने भाषा एटलस जारी किया, जिसके मुताबिक दुनिया की करीब 6000 भाषाओं में से 2500 के लुप्त होने की आशंका है। भारत में सर्वाधिक 196 भाषाओं पर लुप्त होने का खतरा है। दूसरा स्थान अमेरिका का है जहाँ की 192 भाषाओं पर यह संकट है। यूनेस्को के अनुसार दुनिया में 199 भाषाएँ ऐसी हैं, जिन्हें बोलने वाले 10-10 से भी कम लोग हैं।

भाषा की मौत का अर्थ गहरा है। इसके साथ उससे जुड़ी संस्कृति का

भी अन्त हो जाता है, मनुष्यों की विशिष्ट पहचान गुम हो जाती है। भाषा का मरना दुनिया की विविधता पर भी चोट है। यह हमारे एकरंगी विश्व की ओर जाते कदम का सूचक है। दुनिया के भाषा विज्ञानी इसे लेकर साँसत में हैं। वैश्वीकरण के बाद भाषाओं के विलोप में काफी तेज़ी आई है। आज दुनिया की केवल चार भाषाएँ करीब 97 फीसदी लोगों द्वारा बोली जाती हैं। इससे उलट, दुनिया की 96 फीसदी भाषाएँ केवल तीन फीसदी आबादी द्वारा बोली जाती हैं।

भाषाओं के विलुप्त होने के कारणों में मनुष्यों का प्रवास, सांस्कृतिक विलोपन, भाषा के प्रति नज़रिए में बदलाव, सरकारी नीतियाँ, शिक्षा का माध्यम, रोज़गार आदि अहम हैं। वैश्वीकरण के जिस दौर में हम आज आ पहुँचे हैं, वहाँ एक ही तरह का खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना, एक ही तरह की ज़िन्दगी और एक ही तरह की भाषा का ज़ोर है।

---

यह लेख *स्रोत फ़ीचर्स* के जनवरी 2017 अंक में प्रकाशित 'दुनिया से खत्म हो जाएँगी 2500 भाषाएँ' लेख का सम्पादित अंश है।

# साथे में बैंकिंग

पॉल क्रुगमैन



यदि ठीक से काम करें तो बैंक कमाल के होते हैं और आम तौर पर वे ठीक से काम करते भी हैं। लेकिन नहीं करते तो मानो कयामत आ जाती है, जैसा कि वर्ष 2008 में संयुक्त राज्य अमरीका (यू.एस.ए.) और लगभग सारी दुनिया में हुआ।

हम सोचते थे कि बैंकिंग संकट का युग तो 70 साल पहले ही खत्म हो जाना चाहिए था। क्या हमारे देश यानी अमरीका में बैंक पूरी तरह नियंत्रित, बीमाकृत और सरकार द्वारा प्रत्याभूत या गैरंटीड होते हैं? हाँ भी और नहीं भी। परम्परागत बैंकों के लिए हाँ, परन्तु वर्तमान निवेश बैंकों के लिए ऐसा नहीं है। इस उलझन को समझने में बैंकिंग प्रणाली और बैंकों

के नियमन का संक्षिप्त और चुनिन्दा इतिहास मददगार साबित होगा।

## बैंकिंग का इतिहास

ऐसा माना जाता है कि परम्परागत बैंकों की शुरुआत सुनारों से हुई। इनका मुख्य काम तो आभूषण बनाना था लेकिन इसके साथ-साथ लोगों के सोने-चांदी के सिक्कों की रखवाली करना, उनके लिए एक फायदेमन्द उपव्यवसाय बन गया था। सुनारों की दुकानों पर बढ़िया तिजोरियाँ होती थीं, इसलिए लोग अपना धन पलंग के नीचे किसी मज़बूत सन्दूक में न रखकर, सुनारों के पास रखना ज़्यादा सुरक्षित महसूस करते थे।

कुछ वक्त बाद, सुनारों को समझ

## बॉक्स

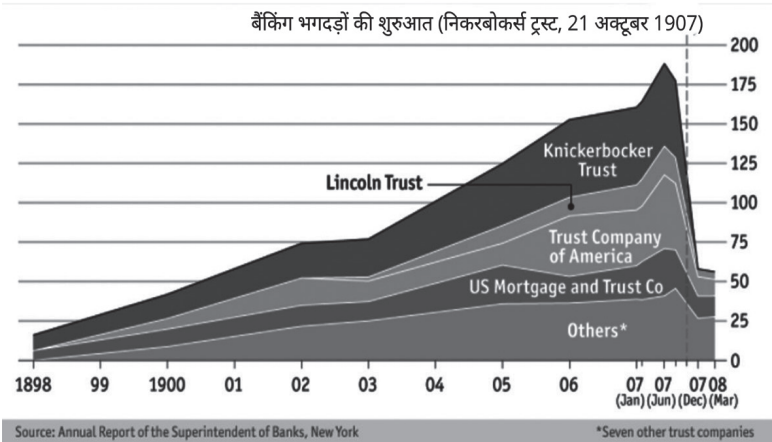
किसी भी देश की मौद्रिक नीति और वित्तीय प्रणाली का सुचारु रूप से संचालन सुनिश्चित करने के लिए ज़िम्मेदार संगठन, केन्द्रीय बैंक कहलाता है। अधिकांश देशों में केन्द्रीय बैंक या मुद्रा बोर्ड होते हैं। किसी भी देश की बैंकिंग प्रणाली, उस देश के केन्द्रीय बैंक द्वारा स्थापित व लागू किए गए नियमों और ऐसे संस्थानों की स्वतंत्रता द्वारा सुरक्षित रहती है।

आया कि उनकी देखभाल में रखे गए सोने-चांदी का कुछ हिस्सा निकालकर, दूसरों को ब्याज पर दिया जा सकता है। इससे उनका उपव्यवसाय और भी फायदेमन्द बन सकता था। आपको ऐसा लग रहा होगा कि इससे वे मुश्किल में पड़ सकते थे: क्या हो अगर धन के असली मालिक आएँ और तुरन्त अपना धन लौटाने की माँग करें? लेकिन तब तक सुनार समझ चुके थे कि जब बहुत लोग उनके पास अपने सिक्के रखते हैं तो औसत के नियम के हिसाब से धन लौटाने की माँग से उन्हें परेशान होने की सम्भावना नहीं बनती थी। हो सकता था कि धन के कुछ मालिक किसी दिन आकर अपने धन की माँग करें, लेकिन जमा करने वालों में से ज़्यादातर या सब लोग एक साथ ऐसा नहीं करेंगे। इसलिए इतना ही काफी था कि उस धन का कुछ हिस्सा सुरक्षित रखा जाए जिससे माँगने वालों की पूर्ती हो सके और बाकी की धन राशि उधार में दी जा सकती है। इस तरह बैंकिंग का जन्म हुआ।

## बैंक-रन या बैंकिंग भगदड़ क्या है?

लेकिन कभी-कभार चीज़ें काफी बिगड़ जाती थीं। जैसे एक अफवाह - झूठी या सच्ची - उड़ती थी कि बैंक का निवेश गड़बड़ हो गया है और बैंक के पास इतनी सम्पत्ति नहीं बची है कि वो अपने जमाकर्ताओं को उनका धन लौटा सके। इस अफवाह के चलते सभी जमाकर्ता घबराकर हड़बड़ी में अपना धन वापस लेने पहुँच जाते थे कि कहीं उनका सारा पैसा न डूब जाए। इसे 'बैंक पर भगदड़' या बैंक-रन कहते हैं। अक्सर इससे बैंक पूरी तरह बैठ जाता, भले ही अफवाह झूठी रही हो। एक साथ सभी लोगों द्वारा अपने धन या पैसों की माँग कोई भी बैंक पूरी नहीं कर सकता। ऐसे भगदड़ के समय जल्दी पैसा खड़ा करने के लिए बैंक को अपनी सम्पत्ति इतने कम दामों पर बेचना पड़ेगी कि उसके पास इतनी सम्पत्ति ही नहीं होगी कि वह लोगों का सारा पैसा चुका पाए।

बैंक पर ऐसे धावे, चाहे वे झूठी अफवाहों पर ही आधारित हों, अच्छी-खासी स्वस्थ संस्थाओं को भी तबाह



**चित्र-1:** ट्रस्टों पर से भरोसा उठना। Y-अक्ष न्यू यॉर्क ट्रस्ट कम्पनियों में जमा राशि दर्शा रहा है (मिलियन डॉलर्स में)।

कर सकते हैं। इसलिए 'बैंक पर भगदड़' की अफवाह, उनकी कब्र खोदने वाली भविष्यवाणियाँ साबित होती थीं। ऐसी भविष्यवाणियाँ जो अपने-आप को सही साबित कर ही देंगी। कई बार बैंक धराशायी इसलिए नहीं होता था कि यह अफवाह उड़ी है कि उसका निवेश गड़बड़ हो गया है बल्कि अफवाह मात्र इतनी होती थी कि 'बैंक पर भगदड़' मचने वाली है। ऐसी अफवाह उड़ना इसलिए भी आसान हो जाता क्योंकि पहले भी कई बार ऐसी 'बैंक पर भगदड़' मची थी।

महामन्दी (ग्रेट डिप्रेशन) के पहले अमरीका में वित्तीय प्रणाली का इतिहास कई आर्थिक संकटों और

'बैंक पर भगदड़' का गवाह रहा है - जैसे कि 1873 और 1907 की भगदड़ आदि। इन आर्थिक संकटों में, भगदड़ अक्सर एक संक्रामक शृंखला बन जाती थी। बैंक जैसे-जैसे धराशायी होते, दूसरे बैंकों पर लोगों का विश्वास कमजोर हो जाता, इसलिए सभी बैंक एक-के-बाद-एक ताश के पत्तों की तरह ढहते-उखड़ते जाते।

सन् 1929 की महामन्दी के पूर्व और 1990 के दशक में आए आर्थिक संकट जिसने एशिया को अपनी चपेट में लिया था, दोनों के बीच समानताएँ महज़ इत्तेफाक नहीं हैं। सारे आर्थिक संकटों में कुछ-न-कुछ समानता तो होती ही है।





## बैंक-रन के समाधानों की खोज

बैंकिंग भगदड़ों की समस्या के चलते, इसके समाधानों की खोज शुरू हुई। गृहयुद्ध और प्रथम विश्वयुद्ध के बीच अमरीका का अपना कोई केन्द्रीय बैंक नहीं था। 'फेडरल रिज़र्व' का निर्माण 1913 में हुआ था, लेकिन इससे पहले यहाँ 'राष्ट्रीय बैंकों' का एक तंत्र मौजूद था जिसके अपने कुछ नियम-कायदे थे। इसके साथ ही, कुछ स्थानीय जगहों पर बैंकर्स ने अपने संसाधन जुटाकर समाशोधन गृह (clearing houses) बना लिए थे जो भगदड़ की स्थिति में संयुक्त रूप से अपने सदस्यों की मदद करते ताकि जिस बैंक पर भगदड़ हो रही हो, उसे सम्भाला जा सके। इसके अलावा, कुछ राज्य सरकारें बैंक की जमा राशियों पर बीमा भी दे रही थीं।

लेकिन 1907 के आर्थिक संकट ने इस प्रणाली की खामियाँ उजागर कर दीं और आज हमारे वर्तमान संकट का पूर्वाभास भी दे दिया। इस संकट का जन्म न्यू यॉर्क के 'ट्रस्ट' नामक संस्थानों में हुआ था। ये ट्रस्ट बैंक की तरह लोगों से जमा राशि स्वीकार करने लगे। असलियत में ये ट्रस्ट अमीर ग्राहकों की विरासत और जायदाद का संचालन करने के लिए बने थे। चूँकि शुरु में इनका काम कम जोखिम वाली आर्थिक गतिविधियों में शामिल होना था, सरकार द्वारा ट्रस्ट का विनियमन या रेग्युलेशन कम किया जाता था। इसलिए इनकी आरक्षित निधि की आवश्यकता और नकदी आरक्षित निधि भी राष्ट्रीय बैंकों की तुलना में कम होती थी। लेकिन जैसे-जैसे बीसवीं सदी के

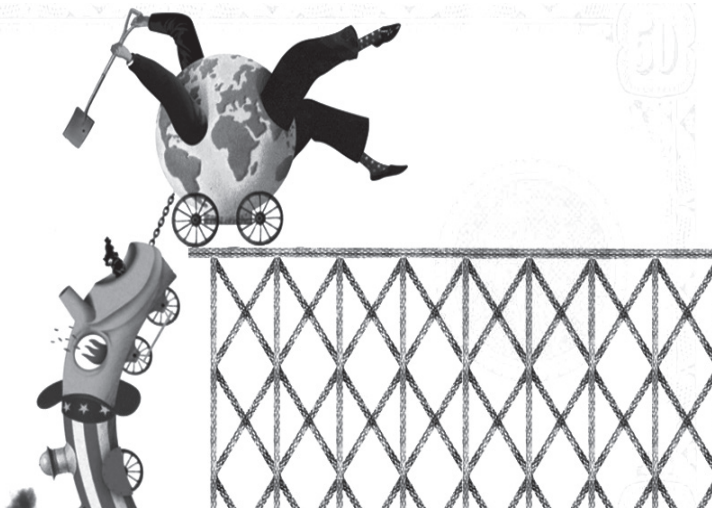
पहले दशक में अर्थव्यवस्था ने तेज़ी पकड़ी, इन ट्रस्टों ने अपने पैर जोखिम भरे रियल एस्टेट और शेयर बाज़ार में पसारने शुरू कर दिए। राष्ट्रीय बैंकों के लिए ये क्षेत्र निषेध थे। चूँकि बैंकों की तुलना में इन ट्रस्ट पर कम विनियमन था, वे अपने जमाकर्ताओं को ज़्यादा ब्याज दे पाते थे। इसी दौरान ट्रस्टों ने राष्ट्रीय बैंकों की मज़बूती की प्रतिष्ठा का लाभ उठाया और जमाकर्ता भ्रमित होकर इन्हें उतना ही सुरक्षित मानने लगे। नतीजा यह हुआ कि ट्रस्ट तेज़ी-से बढ़ने लगे, और 1907 तक न्यू यॉर्क शहर के ट्रस्टों की कुल सम्पत्ति (assets) राष्ट्रीय बैंकों की कुल सम्पत्ति के बराबर पहुँच गयी थी।

इसी दौरान, ट्रस्टों ने न्यू यॉर्क विलयरींग हाउस में जुड़ने से इन्कार

कर दिया। यह न्यू यॉर्क शहर के राष्ट्रीय बैंकों का एक संघ था जो भगदड़ की स्थिति में एक-दूसरे को मदद करके, सलामती सुनिश्चित करता था। अगर ट्रस्ट इसमें शामिल होते तो उन्हें बैंकों की तरह अपनी नकद आरक्षी निधि यानी कैश रिज़र्व बढ़ानी पड़ती। ऐसा करने से उनकी पूँजी कम हो जाती और उनका मुनाफा भी कम हो जाता।

### क्या था 1907 का आर्थिक संकट?

सन् 1907 के आर्थिक संकट की शुरुआत निकरबोर्कर्स (Knickerbockers) ट्रस्ट के डूबने से हुई। यह न्यू यॉर्क शहर का एक बड़ा ट्रस्ट था जिसने बड़े पैमाने पर शेयर बाज़ार में सट्टेबाज़ी में पैसे लगाए, जो डूब गए। इससे न्यू यॉर्क के अन्य ट्रस्ट भी



दबाव में आ गए। अपने पैसे वापस निकालने के लिए भयभीत जमाकर्ताओं का ताँता लग गया, भगदड़ शुरू हो गई। न्यू यॉर्क क्लियरिंग हाउस ने भी ट्रस्टों को उधार देने से मना कर दिया। कई अच्छे खासे ट्रस्टों पर भी भगदड़ शुरू हो गई। लोगों की अपना पैसा निकालने की भगदड़ में सिर्फ दो दिन में एक दर्जन बड़े-बड़े ट्रस्ट डूब गए। क्रेडिट मार्केट ठप हो गए थे और शेयर बाज़ार तेज़ी-से गिरे क्योंकि शेयर व्यापारियों को अपना धन्धा चलाने के लिए कर्ज़ नहीं मिल पा रहा था। कारोबार का हौसला तो मानो हवा हो गया।

खुशकिस्मती से, जे.पी. मॉर्गन नाम के एक बैंकर, जो न्यू यॉर्क के सबसे अमीर आदमी थे, इस भगदड़ को रोकने के लिए आगे आए। यह जानते हुए कि यह संकट जल्द ही अच्छे-खासे संस्थानों, बैंक और ट्रस्ट, सब को निगल लेगा, मॉर्गन अन्य अमीर बैंकर्स, जैसे जॉन डी. रॉकफेलर, और अमरीकी सरकार के वित्तीय सचिव के साथ बैंक और ट्रस्ट की आरक्षी निधि बढ़ाने का प्रयास करने लगे ताकि वे लोगों की पैसे की माँग को झेल सकें। एक बार जब लोग आश्वस्त हो गए कि वे अपने पैसे बैंक या ट्रस्ट से वापस निकाल सकते हैं, घबराहट कम हुई और भगदड़ रुक गई। हालाँकि, यह आर्थिक संकट एक हफ्ते से थोड़ा ही ज़्यादा चला, लेकिन उसने शेयर बाज़ार को डुबा दिया

और अर्थव्यवस्था को चौपट कर दिया। इसके बाद चार साल की मन्दी बनी रही, उत्पाद 11% गिर गया और बेरोज़गारी 3% से बढ़कर 8% हो गई।

## केन्द्रीय बैंक का निर्माण

इस बार आपदा से तो बाल-बाल बच गए थे लेकिन दुनिया को बचाने का ज़िम्मा फिर से किसी जे.पी. मॉर्गन के कन्धों पर छोड़ना अच्छा उपाय नहीं था, इसलिए 1907 के आर्थिक संकट के बाद कई बैंकिंग सुधार होने लगे। सन् 1913 में, राष्ट्रीय बैंकिंग सिस्टम का अन्त हुआ और इस जगह अमरीका के केन्द्रीय बैंक का निर्माण हुआ। इसका उद्देश्य था कि सारे बैंकों को पर्याप्त आरक्षी निधि रखने के लिए बाध्य किया जा सके और वे अपने खातों को केन्द्रीय बैंक के निरीक्षण हेतु खुला रखें।

हालाँकि, इस नई व्यवस्था ने बैंक आरक्षित निधि को मानकीकृत और केन्द्रीकृत कर दिया था, लेकिन इसके बावजूद बैंकों पर भगदड़ होने के खतरे को पूरी तरह खत्म नहीं किया जा सका। सन् 1930 के दशक के शुरुआती सालों में इतिहास का एक और गम्भीर बैंकिंग संकट सामने आया। जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था में गिरावट हुई, चीज़ों की कीमत बढ़ी। इस झटके ने अमरीका के कर्ज़ में दबे किसानों को बुरी तरह त्रस्त किया, जिसकी वजह से 1930, 1931



और 1933 में कर्ज की अदायगी न करने (loan defaults) के कई मामले सामने आए। इसके बाद बैंकों पर भगदड़ होने लगी। प्रत्येक भगदड़ की शुरुआत मध्य-पश्चिमी बैंकों से हुई और फिर पूरे अमरीका में फैल गई। कमोबेश सारे आर्थिक इतिहासकार इस बात से सहमत हैं कि इसी बैंकिंग संकट ने मन्दी को महामन्दी में बदल दिया।

इसकी प्रतिक्रिया में एक ऐसे तंत्र का निर्माण हुआ जिसमें कई सुरक्षा उपाय मौजूद थे। ग्लास-स्टीगल एक्ट-कानून ने बैंकों को दो श्रेणियों में बाँट दिया: वाणिज्यक बैंक और निवेश बैंक। वाणिज्यक बैंक में लोग जमा राशियाँ सुरक्षित रख सकते थे और जब चाहें उसे निकाल सकते थे। निवेश बैंक में ऐसा नहीं था और अपनी पूँजी ब्याज कमाने की दृष्टि से रखी जाती थी। वाणिज्यक बैंकों पर

जोखिम उठाने को लेकर सख्त प्रतिबन्ध थे, और इसके बदले में उन्हें कभी भी केन्द्रीय बैंक द्वारा ऋण मिल सकता था। शायद सबसे ज़रूरी बात, उनकी सारी जमा राशि सरकार द्वारा करदाता के पैसे से बीमाकृत होती थी। निवेश बैंक में इतने सख्त नियम नहीं थे, और इसे स्वीकार्य भी माना गया था, चूँकि उन्हें बैंकों पर होने वाली भगदड़ का खतरा नहीं था क्योंकि वे लोगों से बैंक डिपोज़िट नहीं लेते थे।

इस नए कानूनी तंत्र ने लगभग 70 साल तक वित्तीय संकटों से अमरीकी अर्थव्यवस्था की सुरक्षा की। कई बार चीज़ें बिगड़ भी जाती थीं - जैसे 1980 के दशक में, बुरी किस्मत और खराब नीति के मिले-जुले असर ने कई बचत और कर्ज संस्थाओं को असफल कर दिया। ये संस्थाएँ एक समय अमरीका में प्रमुख गृह-ऋण देने वाले

बैंक बन चुकी थीं। चूँकि इन संस्थाओं की जमा राशियाँ सरकार द्वारा बीमाकृत थीं, अन्ततः यह राशि सरकार को चुकानी पड़ी, और यह राशि सकल घरेलू उत्पाद का 5 प्रतिशत थी जो आज (सन् 2008 में) लगभग 700 अरब डॉलर होगी। इन संस्थाओं के डूबने से कुछ समय के लिए उधारी में कमी आ गई, जो 1990-91 की मन्दी का एक प्रमुख कारण था। लेकिन चीजें इससे ज्यादा नहीं बिगड़ीं। हमें बताया गया कि बैंकिंग संकटों का युग समाप्त हो गया है। ऐसा नहीं था।

## साथे में अनियंत्रित बैंकिंग

### बैंक क्या है?

सुनने में यह एक बचकाना सवाल लग सकता है। हम सभी जानते हैं कि एक बैंक कैसा दिखता है: एक

बड़ी संगमरमर की इमारत होती है। लेकिन एक अर्थशास्त्री के नज़रिए से, बैंकों की परिभाषा उनके रंगरूप से नहीं होती बल्कि इससे होती है कि वे क्या काम करते हैं। उन उद्यमी सुनारों के दिनों से आज तक, बैंकिंग का सबसे ज़रूरी लक्षण यह रहा है कि जो लोग अपने पैसे बैंक की सुरक्षा में जमा करते हैं, बैंक उन्हें नगदी की तत्काल उपलब्धता का वचन देता है। हम जानते हैं कि बैंक ज़्यादातर पैसे ऐसी सम्पत्तियों में निवेश कर देता है जिन्हें तुरन्त नगद में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। फिर भी औसत के नियम अनुसार, बैंक को परेशानी नहीं होती, जब तक लोगों का विश्वास बना रहे।

### नीलामी-दर प्रतिभूति व्यवस्था

सन् 1984 में लेहमेन ब्रदर्स (Lehman Brothers) बैंक द्वारा गढ़ी गई



नीलामी-दर प्रतिभूति (auction-rate security) पर विचार कीजिए। यह व्यवस्था कुछ इस तरह काम करती थी: कोई भी व्यक्ति अपना पैसा एक लम्बी अवधि के लिए किसी उधार लेने वाली संस्था को देता है, कानूनी तौर पर हो सकता है कि यह धन लगभग 30 साल के लिए बँध जाए। लेकिन थोड़े-थोड़े समय के अन्तराल में, प्रायः हफ्ते में एक बार संस्था एक छोटी-सी नीलामी आयोजित करेगी। कुछ पुराने निवेशक जो इस व्यवस्था से निकलना चाहते हैं, उन्हें यह नीलामी मौका देती है। इसमें नए निवेशक उन पुराने निवेशकों की जगह लेने के लिए बोली लगाते हैं। इस नीलामी से तय की गई ब्याज दर तब तक सारे निवेशकों पर लागू होगी जब तक कि अगली नीलामी नहीं होती।

नीलामी-दर प्रतिभूति का विचार इन दो समूहों में तालमेल बिठाना था - एक, वे लोग जो लम्बी अवधि के लिए अपना पैसा निवेश करना चाहते थे और दूसरा, वे लोग जो पैसे लेना चाहते थे। लेकिन ये तो बिलकुल बैंक के काम जैसा है। एक तरफ वे लोग हैं जो लम्बे समय तक जमा राशि रखते हैं और दूसरी तरफ वे लोग जो बैंक से उधार लेते हैं।

लोगों को ऐसा लगता था कि नीलामी-दर प्रतिभूति व्यवस्था सबको पारम्परिक बैंकिंग की तुलना में एक बेहतर सौदा दे रही थी क्योंकि इस

व्यवस्था में निवेशकों को बैंक डिपॉजिट की अपेक्षा ज़्यादा ब्याज दर मिल रहा था। और दूसरी तरफ सिक्यूरिटी यानी प्रतिभूति जारी करने वाले बैंकों को इस व्यवस्था में लम्बी-अवधि के बैंक लोन की तुलना में कम ब्याज पर बाज़ार से पैसे मिल रहे थे। ऐसा प्रतीत होता कि लेहमेन ब्रदर्स बैंक एवं आम लोगों, दोनों को, इस व्यवस्था से फायदा हो रहा था।

वे ऐसा कैसे कर पा रहे थे? जवाब ज़ाहिर है, कम-से-कम आज पीछे मुड़कर देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि पारम्परिक बैंक बहुत विनियमित होते हैं, उन्हें नगद आरक्षी निधि रखनी होती है, पर्याप्त पूँजी रखनी होती है और जमा बीमा प्रणाली में पैसे जमा करने होते हैं। इसकी तुलना में निवेशीय बैंक नीलामी-दर प्रतिभूति द्वारा लोगों से पैसा जमा करवा रहे थे परन्तु उन पर पारम्परिक बैंक के कड़े नियम लागू नहीं थे। न ही उन्हें बीमा पर खर्चा करना पड़ता था। इसलिए वे लोगों को बेहतर ब्याज देकर भ्रमित रख पाए। वास्तव में, वे अनियंत्रित और असुरक्षित थे - बैंकिंग सुरक्षा-जाल के संरक्षण में नहीं थे।

पारम्परिक बैंक की छाया में चलने वाली अनियंत्रित योजनाएँ जैसे कि नीलामी-दर प्रतिभूति व्यवस्था एक निवेशीय बैंक द्वारा चलाई जा रही थी। धीरे-धीरे लोगों की जमा राशि पारम्परिक बैंक से हटकर निवेशीय बैंक की इन योजनाओं में आ गई।

यह छोटी पूँजी नहीं थी। एक समय इन बैंकों ने इस माध्यम से 40,000 करोड़ डॉलर पूँजी जमा कर ली थी।

एक बार जब नीलामी-दर प्रतिभूति व्यवस्था की नीलामी बैठ गई तो लोगों का विश्वास उठने लगा। अब एक-के-बाद-एक बैंक-भगदड़ की तरह नीलामी प्रक्रिया बैठती चली

गई। सभी जगह निवेशकर्ता बाहर निकलना चाहते थे पर उनकी जगह लेने के लिए अन्य लोग तैयार नहीं थे। इस कारण लेहमेन ब्रदर्स जैसे बैंक बैठ गए और विश्वभर में वित्तीय संकट का दौर फैल गया। संकट से बचाने के पारम्परिक बैंकों के नियम व बीमा पर खर्च को इन्होंने बायपास कर दिया था।

**पॉल क्रुगमैन:** एक अमरीकी अर्थशास्त्री हैं। उन्हें वर्ष 2008 में, नए व्यापार सिद्धान्त और नए आर्थिक भूगोल के क्षेत्र में उनके योगदान के लिए, अर्थशास्त्र में नोबेल पुरस्कार मिला। अर्थशास्त्र से जुड़ी कई किताबें लिख चुके हैं और इनके लेख कई जर्नल और पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं।

**अँग्रेज़ी से अनुवाद: अनमोल जैन:** *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं। साथ ही, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, म.प्र. से अँग्रेज़ी साहित्य से एम.ए. कर रही हैं।

**सम्पादन: अरविंद सरदाना:** सामाजिक विज्ञान समूह, *एकलव्य* से सम्बद्ध। एनसीईआरटी एवं अन्य राज्यों की पाठ्यपुस्तकों की निर्माण प्रक्रियाओं से गहरा जुड़ाव रहा है।

यह लेख पॉल क्रुगमैन की किताब *द रिटर्न ऑफ डिप्रेशन इकोनॉमिक्स एंड द क्राइसिस ऑफ 2008* के अध्याय 8 'बैंकिंग इन द शैडो' का सम्पादित स्वरूप है।

समस्त चित्र *द इकोनॉमिस्ट* में प्रकाशित लेख 'द स्लमप्स दैट शोड मॉडर्न फाइनेन्स' से लिए गए हैं।





# लौट के बुद्ध घर को आए

## सतीश अग्निहोत्री

मिन्नी को पता था कि दीपू अब तक रसोईघर में पहुँच चुका होगा - शिकायत लेकर। वो ऊँचे स्वर में न्यूटन के गति के नियम याद करने लगी।

“आवेग के परिवर्तन की दर, लगने वाले बल के समानुपाती होती है... आवेग के परिवर्तन की दर... हूँ... ये परिवर्तन की दर हर जगह आ टपकती है!” उस दिन धीरज भैया ही तो बता रहे थे - जगह के परिवर्तन की दर को वेग कहते हैं, वेग के परिवर्तन की दर को त्वरण कहते हैं। फिर उसने बड़ी-ही मासूमियत से उनसे पूछा था, “और फिर उसके परिवर्तन की दर को?” जवाब में धीरज भैया ने उसके कान खींचते हुए कहा था, “तू बहुत बदमाश होती जा रही है।” बस, हर बात का यही जवाब! जब भी कोई टेढ़ा सवाल किया तो धौंस जमाने लगते हैं; इतनी मोटी-मोटी किताबें न जाने कहाँ से उठा लाते हैं और पढ़ते रहते हैं। फिर भी त्वरण के परिवर्तन की दर को क्या कहते हैं, ये नहीं मालूम।

“मिन्नी!” सामने माँ खड़ी थीं, दाहिना हाथ आटे से सना। थोड़ा आटा बालों पर भी लग गया था और

बाएँ हाथ में - “अरे बाप रे!” मिन्नी के देवता कूच कर गए। बाएँ हाथ में बेलन था और उसके आँचल का छोर पकड़े पीछे वो शैतान, दीपू खड़ा था।

“तुमने फिर छोटे भाई पर हाथ उठाया? इतनी बड़ी हो गई हो फिर भी अक्ल नहीं आई। ऐं?”

“मैंने क्या किया? उलटा वो ही मुझे तंग कर रहा था। मैं गति के नियम याद कर रही थी तो आकर बोला ‘खेलने चलो’। अगर मैं खेलने चली गई तो पढ़ाई कौन करेगा? और जब मैंने मना किया तो मेरी चोटी खींचने लगा।”

“और तुमने उसे थप्पड़ मार दिया?” माँ बोलीं। “थोड़ी देर खेल ही लेती उसके साथ तो क्या बिगड़ता था?”

“तुम उसे कुछ नहीं कहती हो। कितनी ज़ोर-से चोटी खींची मेरी!” मिन्नी रुआँसी हो गई। “और फिर मैं पढ़ रही थी।”

“हाँ, पढ़ाई-पढ़ाई! इतनी पढ़ाई कर-कर के परीक्षा में कौन-सा तीर मार लेती हो? वो पड़ोस की नीता ही तो हमेशा पहली आती है क्लास में और महारानी सातवें-आठवें नम्बर



परा छोटे भाई के साथ दो मिनट खेल लेती तो कोई नुकसान नहीं हो रहा था तेरा। खेलना तो दूर, उस पर हाथ उठा दिया।”

मिन्नी सब कुछ बर्दाश्त कर लेती थी लेकिन सातवें-आठवें नम्बर का ज़िक्र उसे कभी सहन नहीं होता था। गुस्से में उसके आँसू निकल आए। “छोटा भाई-छोटा भाई, जब देखो तब छोटा भाई! वो तो ज़िन्दगी-भर मुझसे छोटा ही रहेगा, मैं क्या उसी के साथ खेलती बैटूँ? तुम तो हमेशा उसी को शह देती हो। तुम्हारा लाड़ला बेटा है ना। छोटा नहीं बनना था तो मुझसे पहले आ जाता। मैं नहीं जाऊँगी खेलने।”

मिन्नी कुछ और बोल पाती, उससे पहले ही माँ ने दो तमाचे लगा दिए। “बोल-बोल, और बढ़-बढ़ कर बोल! तेरी दवाई बस मरम्मत ही है। आने दे तेरे पापा को, उनके हाथ का प्रसाद मिलना चाहिए।”

दीपू बेचारा कोने में सहमा खड़ा था। वह मन-ही-मन सोचने लगा, “मैंने सोचा था, मिन्नी को माँ बस ज़रा-सी डाँट पिलाएँगी, कुछ मज़ा आएगा। यहाँ तो और ही कुछ हो गया। ये माँ भी क्या हैं, कुछ समझती नहीं हैं। मारने की क्या ज़रूरत थी? खाहमखाह मुझ पर मुसीबत। अब शाम को मिन्नी न मुझे इमली तोड़कर देगी, न होमवर्क में मदद करेगी।”

माँ वापस रसोईघर में चली गई। दीपक कुछ सेकण्ड तक अपराधी भाव से खड़ा रहा। उसे पता था कि उसके मनाने का मिन्नी पर कोई असर नहीं होगा। वह चुपचाप बाहर जाकर बरामदे की सीढ़ियों पर बैठ गया।

“क्यों दीपू मियाँ, यहाँ क्या हो रहा है? तुम इस वक्त घर में? मामला क्या है?”

दीपू ने आँखें उठाकर देखा। धीरज भैया सामने खड़े थे। उसने चैन की साँस ली, “चलो, अब इस मिन्नी की बच्ची को मनाने में कोई दिक्कत नहीं आएगी।” उसने मिन्नी की नकल उतारते हुए रुआँसा मुँह बनाया और उस कमरे की तरफ इशारा किया जहाँ मिन्नी अब भी मुँह फुलाए बैठी हुई थी।

“ओहो, तो ये बात है! चाची ने आज सुबह-सुबह करारे-करारे बिस्कुट खिलाए हैं मिन्नी को, है न?” दीपक ने ‘हाँ’ में अपना सिर हिलाया। “ज़रूर तुम्हारी कारस्तानी होगी।” कहते हुए धीरज भैया ने अपना मोर्चा रसोईघर की ओर बढ़ाया। उन्हें पता था कि हर रविवार को रसोईघर में ज़रूर कुछ-न-कुछ पक रहा होता था। मिन्नी को सुनाने के लिए उन्होंने ऊँचे स्वर में कहा, “क्यों चाची, आज सुबह-सुबह ही रामायण पाठ हो गया? हमारी मिन्नी कोप भवन में बैठी हुई है?”

“अरे बेटा, काहे का कोप और

काहे का भवन! ये दोनों नाक में दम कर देते हैं। खासकर पापा न हों तो आफत ही आ जाती है, हर बात पर झगड़ा। ये मिन्नी कम्बख्त इत्ती बड़ी हो गई है, फिर भी समझदारी से काम नहीं लेती। मेरा बस चले, तो बेटा, इसे अगले साल बोर्डिंग स्कूल में भर्ती करवा दूँ।” चाची अपनी रौ में बोलती रहीं।

“अरे बाप रे, सीधा बोर्डिंग स्कूल! यानी मामला काफी सीरियस है,” धीरज ने सोचा। उन्होंने पकौड़ों की प्लेट उठाई और बोले, “चलो, हम ज़रा देख आएँ गुस्सा कितनी डिग्री पर है।”

“हाँ भई, अब तुम्हीं मनाओ महारानी को। लेकिन कोई फायदा नहीं होगा। अब वो सारा दिन बिसूरती रहेगी।” चाची ने सुनाया।

धीरज भैया मिन्नी के पास गए, “ओ मिन्नी, ये पकौड़े हैं न, बड़े ही शानदार बने हैं। ज़रा खाकर तो देखो।”

“आप और आपके पकौड़े जाएँ भाड़ में।” मिन्नी तुनककर बोली। “सुना नहीं आपने कि मैं इत्ती बड़ी हो गई हूँ पर ज़रा भी समझदारी से काम नहीं लेती? वो आपका समझदार दीपू बैठा है न उधर – उसे दीजिए पकौड़े, मुझे नहीं चाहिए।”

“बाप रे बाप! तुम तो खाहमखाह मुझ पर बिगड़ रही हो। मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?”

मिन्नी निरुत्तर रही। धीरज भैया ने

पकौड़ों की प्लेट उसकी ओर बढ़ाते हुए पूछा, “भाई हुआ क्या है, यह तो बताओ।”

“होना क्या है, मैं बड़ी हूँ - यही हुआ है इसलिए मैं सबकी डाँट सुनूँ! सबके हाथों मार खाऊँ! बस और क्या? दीपू छोटा है इसलिए मुझ पर रौब गाँठने का उसे पूरा हक है।” बोलते-बोलते मिन्नी के आँसू निकल आए। “मेरे पास अगर अलाद्दीन का चिराग होता न, तो इस दीपक के बच्चे को बड़ा करवा देती, फिर देखती।”

“भाई, वह तो हो नहीं सकता। हाँ वैसे, आदमी छोटा ज़रूर हो सकता है।”

“क्या? ऐसा होता है?” मिन्नी ने उत्सुकता से पूछा। “हाँ,” धीरज भैया ने कहा, “लेकिन मेरे खयाल से ऐसी मशीन अभी तक बनी नहीं है, सिर्फ लोगों ने हिसाब लगाया है। मान लो, तुम खूब तेज़ उड़ने वाले रॉकेट में बैठकर कहीं गई हो, तो जब तुम वापस आओगी, तुम्हारी उम्र कम हो जाएगी।”

“सच्ची?” मिन्नी की आँखें उत्सुकता से चमक रही थीं।

“हाँ, सच! चाहो तो मेरे पिताजी से पूछ लेना। इसको वैज्ञानिक लोग ‘ट्रिवन पेराडॉक्स’ यानी जुड़वा भाइयों की पहली के नाम से भी जानते हैं।” इस नई जानकारी के मिलने की खुशी में मिन्नी अपना सारा

रोना-धोना भूल गई। धीरज भैया जब तक अपनी बात खत्म करते, मिन्नी पकौड़ों की प्लेट खत्म कर चुकी थी।

तभी मिन्नी के पिताजी आए। “धीरज!” दूर से ही उन्होंने आवाज़ लगाई, “अरे धीरज बेटा, बड़े मौके पर आए।”

धीरज ने हाँ-में-हाँ मिलाई। “जी हाँ चाचाजी! वो आपके घर में जब पकौड़े बन रहे थे न, मुझे अपने घर में खुशबू आने लगी।”

“अरे पकौड़ों की बात कौन कर रहा है?” चौधरी साहब बोले, “तुम ज़रा मेरे साथ बाज़ार चलो, काफी सामान खरीदकर लाना है।”

“मर गए!” धीरज भैया ने कहा, “अच्छा मिन्नी, मैं तुम्हें इसके बारे में बाद में बताऊँगा।”

धीरज भैया तो यह बताकर चले गए लेकिन अनजाने में ही वे एक बहुत बड़ी घटना को निमंत्रण दे बैठे थे।

\* \* \*

चौधरी साहब विक्रम रॉकेट अनुसन्धान केन्द्र में वैज्ञानिक की हैसियत से काम कर रहे थे। धीरज के पिताजी, श्री शर्मा, उस केन्द्र में वरिष्ठ इंजीनियर थे। सारा विक्रमनगर शहर से करीब बीस मील दूर था।

अनुसन्धान केन्द्र में एक बात थी जो धीरज को ही क्या, बड़े-बड़े लोगों को मालूम नहीं थी। धीरज के पिता यानी शर्मा साहब और उनकी टीम

बरसों से एक द्रुतगति रॉकेट के निर्माण में जुटे हुए थे। उनके प्रयत्न अब करीब-करीब पूरे होने को आए थे। अब तक इस्तेमाल किए गए सभी रॉकेटों की गति, इस रॉकेट की गति के सामने फीकी पड़ने वाली थी। इस रॉकेट की एक विशेषता यह थी कि इसमें एक कमरे का निर्माण किया गया था जिसमें कोई भी व्यक्ति बिना स्पेस-सूट पहने रह सकता था और वहीं से पूरे रॉकेट पर नियंत्रण रख सकता था। इसकी सफलता की जाँच के लिए पहली बार एक प्रशिक्षित बन्दर भेजा जाने वाला था।

रॉकेट-अड़्डा बड़ी ही अलबेली जगह पर था। शर्मा साहब का बँगला काफी लम्बे-चौड़े क्षेत्र में फैला हुआ था। वहाँ उन्होंने कोई दस साल पहले एक पूजाघर बनवाया था। लेकिन हकीकत यह थी कि उस बड़े-से पूजाघर के ठीक नीचे रॉकेट-घर था।

धीरज के जाने के बाद मिन्नी काफी देर तक छोटा होने की तरकीब के बारे में सोचती रही। टेढ़ी खीर तो ऐसे रॉकेट के बनने में थी। जब रॉकेट ही नहीं है तो वो शर्मा अंकल को कहेगी क्या और वो बेचारे भी क्या करेंगे। “लेकिन पूछने में हर्ज़ क्या है?” उसने सोचा। “हो सकता है ऐसी मशीन हो भी। ये धीरज भैया उतने बुद्धिमान थोड़े ही हैं जितना दिखाते हैं। उनकी किताब में लिखा होगा तो बता सकते हैं, नहीं तो उन्हें कुछ मालूम भी नहीं होता। अब देखो,

त्वरण के परिवर्तन की दर को क्या कहते हैं, ये भी उन्हें मालूम नहीं। पापा को ज़रूर मालूम होगा लेकिन ये पापा भी... ऐसे कहीं पापा होते हैं! कुछ पूछो तो ‘बेटा मुझे अभी तंग मत करो’। हमेशा मोटी-मोटी किताबों में डूबे रहते हैं। किसी दिन अगर पूछा ‘पापा आपका नाम क्या है?’ तो भी शायद बोलेंगे ‘माँ से पूछ लो बेटा, अभी मैं बिज़ी हूँ। बिज़ी हूँ तो हैं, मेरी बला से! शर्मा अंकल को देखो, मुझे कितना मानते हैं। वो तो पापा से भी ज्यादा मोटी-मोटी किताबें पढ़ते हैं। फिर भी मुझे हमेशा प्यार से बुलाते हैं, कहानियाँ सुनाते हैं - अन्तरिक्ष यात्रियों की, ग्रहों की, तारों की। पापा तो बस दीपू को ही बताते हैं। चलो, शर्मा अंकल से ही कल शाम को पूछूँगी।”

दूसरे दिन शाम को, मिन्नी शर्मा साहब के दरवाज़े पर हाज़िर थी। शर्मा साहब अपनी घूमती कुर्सी पर बैठे थे। मिन्नी को यह कुर्सी काफी अच्छी लगती थी। कुर्सी से भी अच्छी उसे वे ढेर सारी करामाती मशीनें लगती थीं, जो शर्मा साहब ने अपने कमरे में लगा रखी थीं। इस समय, वे दरवाज़े की ओर पीठ किए हुए थे। मिन्नी का अन्दाज़ा सही निकला। वे अपनी तुरन्त-कॉफी मशीन पर झुके हुए थे। “मैं अच्छे मौके पर आई हूँ।” मिन्नी ने सोचा, “अब ज़रूर बिस्कुट मशीन से बिस्कुट निकलेंगे।” शर्मा साहब ने मशीन का बटन दबाया।

तश्तरी निकली। मशीन में से एक हाथ बाहर आया, छः बिस्कुट तश्तरी में रखे और वापस अन्दर चला गया। मिन्नी दबे पाँव कुर्सी के नीचे बैठ चुकी थी। उसने कुर्सी को धीरे-से घुमा दिया।

“अरे!” शर्मा साहब के मुँह से निकला। उन्होंने दरवाज़े की ओर नहीं देखा था। जब तक वे फिर से घूमकर कॉफी की ओर आए, मेज़ पर से बिस्कुटों की प्लेट गायब हो चुकी थी। वे हँसे, “तो ये चोर है! चोर साहब, कुर्सी के नीचे से निकलो, मेज़ पर और भी बिस्कुट पड़े हैं।”

मिन्नी कुर्सी के नीचे से निकली। और सीधा प्रश्न दागा, “अंकल, आप मुझे दीपू से छोटा बना देंगे?”

“अरे, न देखा आव न देखा ताव, न बिस्कुट देखे न पाव, ये दीपू से छोटा बनने की धुन कहाँ-से आ गई? ऐसा तो सम्भव नहीं है बेटा।”

“हेहे, सम्भव नहीं है! धीरज भैया कह रहे थे कि ऐसा एक रॉकेट होता है जिसमें बैठकर उड़ने वाले की उम्र कम हो जाती है।” शर्मा साहब के हाथों से तश्तरी छूटकर मेज़ पर गिर गई। उन्होंने मिन्नी को आगे कहते सुना, “वो बोल रहे थे कि अभी ऐसा





रॉकेट कहीं बना नहीं है, लेकिन लोगों ने हिसाब लगाया है।”

“ओह!” शर्मा साहब ने चैन की साँस ली। “बेटा, हिसाब तो लोग बहुत साल पहले लगा चुके हैं। सौ साल से भी ऊपर हो गए उसको। लेकिन ऐसा रॉकेट बना पाना सम्भव नहीं है।”

“क्यों सम्भव नहीं है?” मिन्नी ने पूछा।

“उसके बहुत-से कारण हैं बेटा। हमारे पास इतने ताकतवर इंजन नहीं हैं, फिर इतने तेज़ रॉकेट को बनाने के लिए धातु का निर्माण नहीं हुआ है वगैरह-वगैरह।”

“वो क्यों? अन्य रॉकेट्स जिस धातु से बनते हैं, उसी से ये रॉकेट भी बना डालिए।”

“नहीं-नहीं बेटा,” अंकल ने प्यार से समझाया, “देखो, जब रॉकेट अन्तरिक्ष से घूम-घाम कर वापस धरती की ओर आते हैं न, तो वे धरती के वायुमण्डल में तेज़ी-से प्रवेश करते हैं। उस समय हवा से रगड़ खाने के कारण उनकी बाहरी परत जल उठती है।”

“वे इतनी तेज़ी-से प्रवेश करते हैं?”

“हाँ, उनकी गति बहुत ज़्यादा रहती है। तुम्हारे हवाई जहाज़ तो उसके सामने कुछ भी नहीं। जो रॉकेट जितनी तेज़ी-से धरती के वायुमण्डल में प्रवेश करता है, उतनी

ही तेज़ी-से उसकी ऊपरी परत जल उठती है। वहाँ इतना ज़्यादा तापक्रम निर्मित होता है कि ये लोहा वगैरह तो सेकण्डों में गलकर खत्म हो जाएँगे। इसलिए जितना तेज़ रॉकेट बनाना हो, उसे उतनी ज़्यादा कठिन धातु से बनाना पड़ता है, जो खूब ऊँचे तापक्रम पर भी गले नहीं।”

“लेकिन अंकल,” मिन्नी ने पूछा, “ये रॉकेट में घूमने और उम्र कम होने का क्या सम्बन्ध है?”

“वो समझाना ज़रा टेढ़ी खीर है, बेटा।”

“हाँ-हाँ, आप भी पापा जैसी टालमटोल शुरू कीजिए – बेटा, जब तुम बड़ी हो जाओगी तब समझोगी, अभी मेरा दिमाग मत खाओ।”

“अरे, नहीं-नहीं!” शर्मा अंकल ने कहा, “मैं कब ऐसा कह रहा हूँ। तुम टेढ़ी खीर खाने को तैयार हो, तो मैं बताता हूँ।” शर्मा साहब ने गरम-गरम कॉफी दो कप में डाली और चुस्कियों के बीच बताने लगे।

“बेटा, तुमने आइंस्टाइन महोदय का नाम तो सुना होगा। वे बहुत बड़े वैज्ञानिक थे। सौ साल से भी पहले, उन्होंने सापेक्षतावाद का सिद्धान्त दुनिया को दिया था। सापेक्षतावाद के सिद्धान्त के बारे में तुमने कभी सुना है?” मिन्नी ने ‘न’ में सिर हिलाया। यह ‘वाद’ उसके कुछ पल्ले नहीं पड़ा।

“देखो,” शर्मा साहब ने बताया,



“अब धीरज तुमसे काफी बड़ा है, यानी तुम्हारी अपेक्षा उसकी उम्र ज्यादा है। अब उसकी अपेक्षा मेरी उम्र ज्यादा है। अब बेटा, मेरे पिताजी को तुमने देखा है न, उनकी उम्र मेरी अपेक्षा काफी अधिक है। इसलिए बड़ा-छोटा होना सापेक्ष होता है। धीरज तुम्हारे लिए बड़ा है, मेरे लिए छोटा है। आया समझ में?” मिन्नी ने ‘हाँ’ में सिर हिलाया।

“उसी तरह लम्बा होने की अवधारणा भी सापेक्ष है। अब देखो, धीरज तुमसे कितना लम्बा है लेकिन उसे ऊँट के साथ खड़ा कर दो तो कैसा लगेगा?”

“हीहीही...” मिन्नी को इस खयाल में काफी मज़ा आया। “धीरज भैया तो ऊँट के आगे बिलकुल पिद्दी लगेंगे।”

“वैसी ही बात गति के बारे में भी है।” शर्मा अंकल ने कहा, “जैसे साइकिल आदमी से तेज़ दौड़ती है, पर रेलगाड़ी के मुकाबले धीमी होती है। ऐसे ही, हवाई जहाज़ रेलगाड़ी से तेज़ चलता है। लेकिन गति के बारे में एक पाबन्दी है जो दूरी या समय के मामले में नहीं होती क्योंकि उन्हें अनन्त तक बढ़ाया जा सकता है। पर गति की पाबन्दी यह है कि कोई भी वस्तु प्रकाश से ज्यादा तीव्र गति से नहीं चल सकती।”

“यानी प्रकाश दौड़ भी सकता है?” मिन्नी ने पूछा।

“हाँ बेटा, अगर हम यहाँ से टॉर्च

जलाएँ और चाँद की ओर रुख करें तो प्रकाश को वहाँ पहुँचने में कुछ मिनट लग जाएँगे। आम जीवन में हमें यह पता नहीं लगता क्योंकि प्रकाश बहुत ही तीव्र गति से फैलता है। जानती हो, वह गति क्या है? एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकण्ड।”

“अरे बाप रे!” मिन्नी ने कहा। उस दिन धीरज भैया महज़ सौ किलोमीटर प्रति घण्टे की रफ्तार से मोटर साइकिल चला रहे थे तो वह कितना घबरा गई थी।

“और यही वजह है कि ग्रहों, तारों वगैरह की दूरियाँ मापने के लिए वैज्ञानिक प्रकाश-वर्ष की इकाई का व्यवहार करते हैं। यानी एक वर्ष में प्रकाश जितनी दूरी तय करता है। अब सूरज को देखो, हमसे महज़ आठ प्रकाश मिनट दूर है।”

“यानी वहाँ से निकले हुए प्रकाश को हम तक पहुँचने में आठ मिनट लगते हैं?” मिन्नी ने पूछा।

“बिलकुल ठीक! लेकिन बेटा, जैसे-जैसे किसी वस्तु, मान लो रॉकेट, की गति बढ़ने लगती है और प्रकाश की गति के करीब आने लगती है, कई मजेदार बातें होती हैं। जैसे, तुम्हें लगेगा कि उस रॉकेट में जो पटरी है, उसकी लम्बाई घट रही है। उसमें जो घड़ी है, वह धीरे-धीरे चल रही है और उस रॉकेट में जो चीज़ें हैं, उनका वज़न बढ़ रहा है।”

“क्या ऐसा वाकई होता है?”

“नहीं बेटा, यह सब ‘तुम्हें’ लगेगा पर रॉकेट में बैठे आदमी को ऐसा कोई परिवर्तन नज़र नहीं आएगा, बल्कि उसे लगेगा कि तुम्हारे हाथ में जो घड़ी है, वह सुस्त है या तुम्हारा वज़न बढ़ा है। ऐसा इसलिए कि उसके लिए तुम्हारी गति उतनी ही है जितनी तुम्हें उसकी गति लगती है।”

“लेकिन जब हम दोनों फिर एक जगह आ जाएँगे, तब?”

“तब बस पहले जैसा मामला हो जाएगा, दोनों की घड़ियाँ एक जैसी चलेंगी, वज़न एक बराबर हो जाएगा।”

“लेकिन अंकल, इसमें उम्र घटने की बात कहाँ से आई?” मिन्नी अपने मतलब की बात पर आई।

“हाँ बेटा, मैं वही बताने जा रहा था। अचरज की बात है ‘जुड़वा भाइयों की पहेली’। मान लो, दो जुड़वा भाई हैं, उनमें से एक को हम खूब तेज़ रफ़्तार रॉकेट में अन्तरिक्ष में भेज देते हैं और दूसरा उसकी वापसी का इन्तज़ार करता है। कुछ सालों बाद, रॉकेट में उड़कर जाने वाला भाई वापस चला आता है। अड़्डे पर उतरकर वह देखेगा कि इन्तज़ार करने वाला उसका भाई, अधेड़ हो चुका है और वह खुद अभी तक जवान है।”

“वो कैसे?” मिन्नी ने हैरानी-से पूछा।

“यही तो, बेटा, वैज्ञानिकों के लिए

पहेली थी। उनके हिसाब से वापस आने पर दोनों भाइयों की उम्र समान होनी चाहिए थी क्योंकि अगर हम सिर्फ गति के हिसाब से देखें, तो दोनों भाइयों में कोई फर्क नहीं होना चाहिए। एक की अपेक्षा दूसरे की गति वही है जो दूसरे की अपेक्षा पहले की। पर बाद में देखा गया कि जो भाई रॉकेट में जाता है, वह शून्य की गति से शुरुआत करके काफी अधिक गति पाता है, और जब धरती पर वापस पहुँचता है तो उसकी गति फिर शून्य हो जाती है।”

“यानी उसकी गति के परिवर्तन की दर बहुत होती है।” मिन्नी ने अँधेरे में तीर मारा।

“शाबाश!” शर्माजी ने कहा, “तुम तो जीनियस हो भाई! तुमने ठीक ही सोचा, जो भाई त्वरण से गुज़रता है उसकी उम्र घटती है और जो धरती पर रहता है...”

“उसकी सफेद दाढ़ी हो जाती है, है न?”

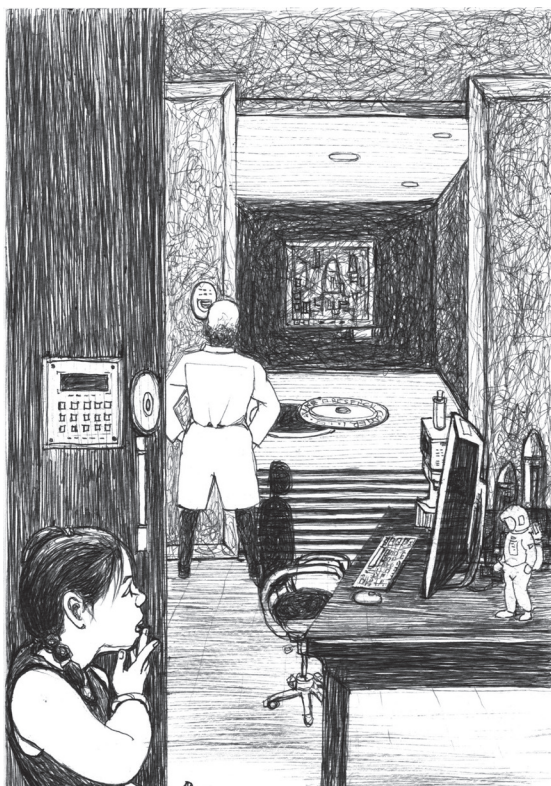
“हाँ, उत्पाती जीनियस! लेकिन यह सब समझने के लिए बड़ी होकर, चश्मा लगाकर मोटी-मोटी किताबें पढ़नी पड़ेंगी। तब ढेर सारा गणित, ढेर सारा अलजेब्रा...”

“अरे बाप रे! अंकल, अलजेब्रा...” मिन्नी उठ खड़ी हुई, “मेरा कल का होमवर्क...”

“हाँ-हाँ हो जाएगा, लेकिन उसके लिए भागने की क्या ज़रूरत है? ...

अच्छा बेटा, जाते-जाते फाटक बन्द करती जाना।”

फाटक के पास पहुँचते-पहुँचते मिन्नी को याद आया कि उसके कंचों की पोटली शर्माजी की कुर्सी के नीचे ही रह गई है। “धता!” उसने खुले गेट को बन्द किया और उलटे पाँव लौट गई। चौकीदार ने उसकी ओर एक उचटती निगाह डाली और मुस्करा दिया। इस गुड़िया को जैसे सभी ने सर चढ़ा रखा था।



दरवाज़े पर ही मिन्नी ठिठकी। शर्मा अंकल टेलिफोन पर किसी से बातें कर रहे थे। और उनकी बातों में उसने अपना नाम सुना।

“...हाँ-हाँ, चौधरी की लड़की - मिन्नी,” शर्माजी बोल रहे थे, “मेरी तो ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की साँस नीचे रह गई। इसे रॉकेट के बारे में भनक कैसे पड़ी? ...हाँ-हाँ, नहीं-नहीं, बाद में पता चला धीरज ने उसे बस टिवन पेरार्डॉक्स के बारे में

बताया भर था; हाँ, उसने यह भी कहा था कि ऐसा रॉकेट बना नहीं है कहीं भी। मैं तो यार डर गया था, कहीं धीरज को अपने रॉकेट की बात तो मालूम नहीं हो गई... हाँ... मेरे खयाल में मिन्नी ने हमेशा की तरह सोचा होगा कि धीरज से ज़्यादा अंकल को पता होगा, सो बस आ गई... न-न, बस कुछ बिस्किट-विस्किट खिलाए, छोटा-सा उदाहरण दिया और समझा दिया। हाँ-हाँ, ये भी बताया कि कैसे

इतनी तेज़ चलने वाला रॉकेट वापसी में जल जाएगा।” यह कहकर शर्माजी ने एक कहकहा लगाया।

“हूँ... तो ये बात है!” मिन्नी ने सोचा, “मुझे बहकाया जा रहा था।” वह ध्यान देकर आगे की बातचीत सुनने लगी - “घबराओ नहीं, यहाँ कोई नहीं आता। वैसे कोई सोच भी नहीं सकता कि मेरे घर का बाहरी गुसलखाना उस रॉकेट का उड़ान-तल भी हो सकता है... हाँ, हूँ, और देखो कृष्णन, तुम्हारे वो बन्दर तैयार हैं न? हाँ, उनकी ट्रेनिंग तो अब पूरी हो चुकी होगी... बहुत अच्छे! कल सुबह तक सब हो जाना चाहिए... मेरी ओर से सब तैयार है। रॉकेट पूजाघर से सुरंग के ज़रिए गुसलखाने के नीचे आ चुका है। हरा बटन तो बन्दर खुद दबाएगा... नहीं-नहीं, हम लोग कुछ नहीं करेंगे। रॉकेट के अन्तरिक्ष में पहुँचने के बाद ही अपना काम शुरू होगा। क्या? हाँ, वह मेरे... मैं अभी जा रहा हूँ गुसलखाने में। यहाँ कौन सुनेगा हमारी बातें... भई, शर्मा का घर है, कोई मज़ाक थोड़े ही है... अच्छा, मैं फिर बात करूँगा। हाँ, अभी देखता हूँ...”

इधर मिन्नी के दिमाग में चक्कर चल रहा था। मुख्य रूप से वह काफी साहसी लड़की थी। टॉप सीक्रेट को सुनकर अपने सारे काम भूल गई। उसने तय किया कि वह चुपचाप अंकल के पीछे-पीछे जाकर तथाकथित ‘गुसलखाना’ देख आएगी। अगर

अंकल ने देख लिया तो? कोई बहाना तो बनाना पड़ेगा। डॉट ही पड़ेगी, लेकिन रॉकेट देख पाने की तीव्र इच्छा के आगे डॉट का डर नहीं टिका।

शर्माजी ने फोन रख दिया और उठ खड़े हुए। उन्हें मिन्नी की उपस्थिति का आभास तक नहीं हुआ। दरअसल, उन्हें किसी की भी उपस्थिति की आशा नहीं थी। वे सीटी बजाते हुए ‘पूजाघर’ की ओर चल पड़े। मिन्नी भी दबे पाँव उनके पीछे हो ली। पूजाघर में डॉ. शर्मा ने मशीनी तौर पर दो-तीन बटन दबा दिए। अब उन्हें इत्मीनान था कि उनके घर में बिना जानकारी कोई प्रवेश नहीं कर सकता था। साथ ही, घर के बाहर जलता हुआ बल्ब समझदारों के लिए इशारा था कि कोई अन्दर न आए, लेकिन उन्हें यह कहाँ पता था कि एक नन्ही-सी आफत उनके आसपास ही मौजूद थी। उन्होंने दरवाज़े पर लगे ताले के नम्बर घुमाए। ताला खुलने के बाद उन्होंने दरवाज़े को दीवार की ओर सरका दिया। उनके सामने की दीवार के आगे एक लम्बी-चौड़ी मूर्ति थी। डॉ. शर्मा ने मूर्ति की ओर देखते हुए कहा, “मैं शर्मा हूँ, मैं शर्मा हूँ, मैं शर्मा हूँ।” मिन्नी ने देखा कि वह मूर्ति दो भागों में बँटकर दरवाज़े की तरह दीवार के अन्दर सरक गई। उसे खास आश्चर्य नहीं हुआ। खुद शर्मा अंकल ने ही उसे एक बार आवाज़ से

खुलने वाले दरवाज़ों के बारे में बताया था। इन दरवाज़ों की खासियत यह थी कि ये एक ही व्यक्ति की आवाज़ पर खुल सकते थे। मिन्नी को याद आया जब अंकल बता रहे थे, “बेटा, दिक्कत सिर्फ़ इतनी है कि जब मुझे काफी सर्दी हो जाती है न, तो कम्बख्त दरवाज़ा कभी-कभी खुलने से इनकार कर देता है।” “कितने चालाक हैं अंकल!” मिन्नी ने सोचा, “दरवाज़ा घर में है और मुझसे उस दिन कहा ‘सॉरी भई, वो दरवाज़ा तो मेरी प्रयोगशाला में है, और बेटा जानती ही हो, वहाँ किसी को ले जाने की इजाज़त नहीं है’, खैर अंकल भी क्या याद करेंगे जब पता चलेगा कि मैंने दरवाज़ा देख लिया है...”

\* \* \*

शर्मा अंकल बातें करते हुए ऊपर आ रहे थे, “हाँ भई, देखो मैंने सब चेक कर लिया है। कमरे में ऑक्सीजन काफी है। तुम्हारे बन्दर को कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए। अगर इन्तज़ाम सफल रहा तो अगली बार हम अपने वैज्ञानिक बड़े आराम-से भेज सकेंगे। स्पेस-सूट की ज़रूरत ही नहीं रहेगी... खैर, आगे देखिए होता है क्या...”

मिन्नी इत्मीनान से अपनी जगह दुबकी हुई थी। शर्मा साहब ने मेनहोल का ढक्कन वापस लगा दिया और कमरे से बाहर निकल गए। दरवाज़ा बन्द हो गया। अब मिन्नी कमरे में

अकेली थी। उसे कुछ उलझन-सी हुई। रॉकेट-वॉकेट तो कोई नज़र नहीं आ रहा। “चलो,” उसने सोचा, “नीचे जाकर देखें, शर्मा अंकल ने शायद वहाँ रॉकेट छुपाकर रखा हो।” उसने मेनहोल का ढक्कन खोला और नीचे झाँका। नीचे फर्श तक जाने के लिए एक धातु की सीढ़ी लगी हुई थी। मिन्नी नीचे उतर गई। कमरा क्या था, कलपुर्जों से भरा हुआ भानुमती का पिटारा था। पहली बात जो मिन्नी के ध्यान में आई, वह थी कमरे का सिलिंडर जैसा आकार। फर्श पर बीचोंबीच एक प्लेटफॉर्म-सा बना हुआ था। मिन्नी उसके ऊपर आ गई और घूम-घूमकर प्लेटफॉर्म का मुआयना करने लगी। तभी उसकी नज़र एक टेलीविज़न पर पड़ी जिसके ऊपर लिखा था ‘क्या कहाँ है’। मिन्नी को तुरन्त याद आया कि ऐसे ही टेलीविज़न तो चौराहों पर लगे हैं जहाँ बसों के आने-जाने के समय वगैरह दिखाए जाते हैं। उसने बटन दबाकर टी.वी. को चालू किया। टी.वी. परदे पर उसे शर्माजी का घर दिखाई दिया, फिर धीरे-धीरे उनके घर के प्रवेश से लेकर पूजाघर का रास्ता दिखा। फिर मिन्नी ने जो कुछ देखा, उससे वह दंग रह गई। एक चित्र था जिसमें एक गोल रॉकेट की आकृति थी, उसके ऊपर शर्माजी के घर का हिस्सा था। मिन्नी को मेनहोल भी नज़र आया। अब रॉकेट के अन्दर का भाग नज़र आ रहा था। मिन्नी को

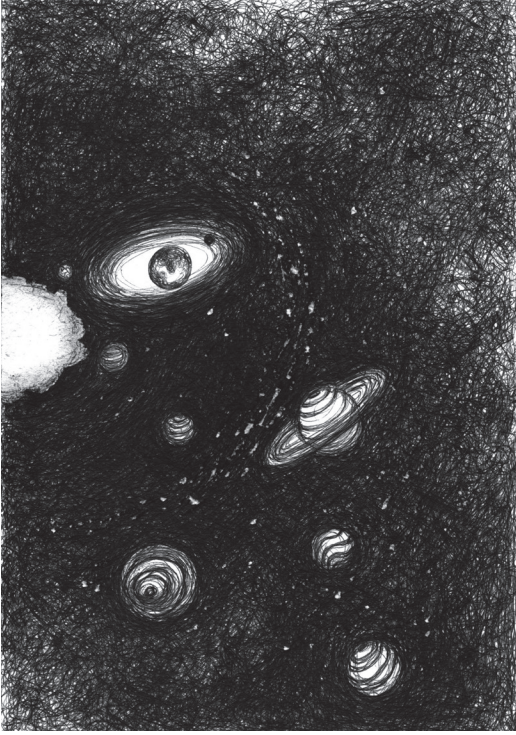


सीढ़ी नज़र आई। उसे यह भी एहसास हो गया कि इस समय वह जहाँ खड़ी थी, वह और कुछ नहीं, रॉकेट का अन्दरूनी हिस्सा था। ऊपर गुसलखाना और नीचे पता नहीं, मिन्नी ने सोचा, “क्या हो।” मन ने फिर कहा, “मिन्नी, सोच लो। कहीं गुम गई तो? फिर घर वापस भी नहीं लौट पाएगी।” पर भीतर की साहसी मिन्नी ने ज़ोर मारा, “हूँ... जहाँ बन्दर जा सकता है वहाँ मुझे क्या होगा? और फिर रॉकेट को क्या पता कि हरा बटन बन्दर ने दबाया या इन्सान ने...”

शर्माजी बड़े इत्मीनान से खाना खा रहे थे। कल के परीक्षण की उत्सुकता उनके चेहरे पर झलक रही थी। सामने की मेज़ पर बैठे धीरज को

वे मिन्नी के आने के बारे में बता चुके थे। अचानक उन्हें एक थरथराहट-सी महसूस हुई। उन्होंने चौंककर टेबल की ओर देखा, निश्चय ही टेबल पर रखे बरतन काँप रहे थे। यहाँ तक कि जिस कुर्सी पर वे बैठे थे, वहाँ भी... “भूकम्प,” उन्होंने इतना ही धीरज से कहा और दोनों बाहर की ओर भागे। शर्मा साहब को भूकम्प से भी बड़े धक्के का सामना करना था। उन्हें देखते ही चौकीदार चिल्लाया, “शर्माजी! शर्माजी! वो... वो घर का पिछवाड़ा!” डर से काँपते चौकीदार की उँगली की दिशा में शर्मा साहब मुड़े और टगे-से खड़े रह गए। उनका ‘गुसलखाना’ धीरे-धीरे ऊपर की ओर उठ रहा था और उसके नीचे उन्हें





रॉकेट की धातुई खोल साफ नज़र आ रही थी। दूसरे ही क्षण रॉकेट पूरा बाहर आ चुका था। शर्माजी काँप गए। एक ही क्षण में लाखों सवाल उनके दिमाग में कौंध गए। “असम्भव,” उनके मन ने कहा। उन्होंने खुद को ज़ोर की चिकोटी काटी। सामने का दृश्य सच्चा था। फिर अगला खयाल जो शर्माजी के दिमाग में कौंधा, वह सुरक्षा का था। “आँखें बन्द कर लो!” वे चिल्लाए। गति लेते हुए रॉकेट के निचले हिस्से से निकलने वाली लपट चमकीली होती जा रही थी...

...जारी

**सतीश बलराम अग्निहोत्री:** भारतीय प्रशासनिक सेवा के भूतपूर्व अधिकारी और अब आई.आई.टी. मुंबई में प्राध्यापक। जन्म रत्नागिरि ज़िले के देवरुख गाँव में हुआ। बचपन बिहार के दरभंगा शहर में गुज़रा जहाँ स्कूल और कॉलेज की पढ़ाई की। इसके बाद आई.आई.टी. मुंबई से फिज़िक्स और फिर पर्यावरण विज्ञान में एम.टेक. किया। फिर 1980 से भारतीय प्रशासनिक सेवा में ओडिशा राज्य एवं केन्द्र सरकार में कई विशिष्ट पदों पर 35 साल सेवारत रहे। हिन्दी में विज्ञान कहानियाँ और लेख लिखने की शुरुआत तब की जानी-मानी पत्रिका ‘धर्मयुग’ से हुई। व्यंग्य रचनाएँ भी लिखते रहते हैं। सम्पर्क - satishagnihotri1955.in

**सभी चित्र: पूलता ब्लैकडॉट:** एक कलाकार हैं। वे फाउंड ऑब्जेक्ट्स, रोज़मर्रा के सामान, समय की रैखिकता, स्पेस, यादों और निजी अनुभवों के साथ काम करते हैं। सम्पर्क - pooltahblackdot@gmail.com



# सवालीराम

**सवाल:** फिल्म में ऐसा क्या होता है जो सब चलते-फिरते दिखते हैं?

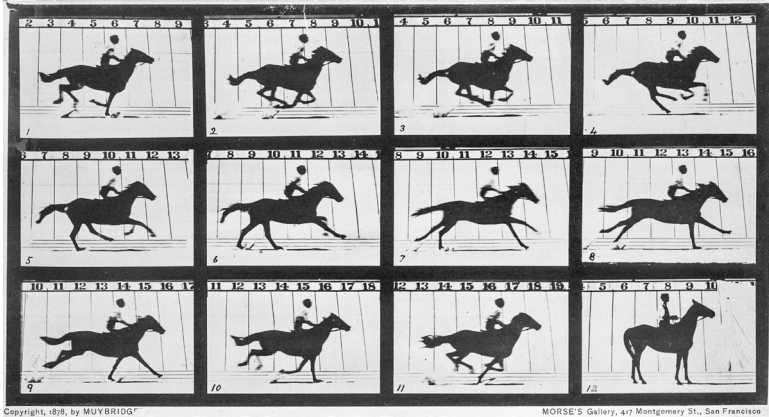
- कक्षा 8, राधास्वामी हाई स्कूल, टिमरनी,  
(होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम) होशंगाबाद, म.प्र., 1994

**जवाब:** जब मैंने यह सवाल पढ़ा तो मेरा खयाल था कि मुझे इसका जवाब पता है। लेकिन सोचा कि एक बार फिर कुछ पढ़ लेने में कोई बुराई नहीं है। और जब मैंने पढ़ा तो समझ में आया कि जो जवाब में जानता था, वह गलत था और बहुत गलत था। कारण यह है कि दृष्टि यानी देखने की क्रिया के बारे में हमारी समझ कमोबेश रेटिना पर होने वाली जैव-रासायनिक अभिक्रियाओं पर टिकी थी जबकि अब यह स्पष्ट हो गया है कि देखने में मस्तिष्क भी काफी पेचीदा ढंग से शामिल होता है।

तो पहले वही जवाब बताता हूँ जो मुझे पता था और गलत निकला। कहते हैं कि चलचित्र में लगातार हरकत इसलिए दिखाई देती है क्योंकि हमारे रेटिना (यानी वह पर्दा जिस पर प्रतिबिम्ब बनते हैं) पर जब किसी चीज़ की छवि बनती है, तो वह उस चीज़ के हट जाने के बाद भी कुछ समय तक बनी रहती है। इसे विज्ञान की भाषा में पर्सिस्टेंस ऑफ विज़न (यानी छवि का टिके रहना) कहते हैं। तो होता यह है कि जब इस

पहली छवि के मिटने से पहले ही कोई दूसरी छवि (जो पहली का थोड़ा परिवर्तित रूप हो) आ जाती है, तो हम इन्हें एक ही छवि का बदलता रूप मान लेते हैं। इसलिए हमें ये दो छवियाँ नहीं, बल्कि एक ही छवि में हरकत का एहसास देती हैं। ऐसा यदि थोड़ी-थोड़ी बदलती छवियों के साथ बार-बार सिलसिलेवार ढंग से हो तो हमें लगेगा कि हम अलग-अलग चित्र नहीं बल्कि एक ही चित्र को बदलता हुआ देख रहे हैं। यहाँ मुख्य बात यह है कि वास्तव में कोई गति नहीं हो रही है, हमें मात्र इसका एहसास हो रहा है।

काफी समय तक इसी बात को माना जाता था। लेकिन इसमें एक समस्या है। समस्या यह है कि यदि एक छवि के मिटने से पहले दूसरी छवि आ जाए, तो वे एक-दूसरे पर आरोपित हो जाएँगी यानी छवियों की थप्पियाँ बनती जाएँगी। तब हमें जो एहसास होगा, वह धुँधलेपन का होगा - चलने-फिरने का नहीं। कहने का मतलब है कि लगातार अटूट गति दिखने के लिए ज़रूरी है कि छवियाँ



Copyright, iBR, by MUYBRIDGE

MORSE'S Gallery, 417 Montgomery St., San Francisco

**चित्र-1:** 'द हॉर्स इन मोशन' (गतिमान घोड़ी) वर्ष 1878 में एडवर्ड मायब्रिज द्वारा खींची गई 12 तस्वीरों की एक क्रमबद्ध शृंखला है जिसमें सैली गार्डनर नाम की घोड़ी को दौड़ते हुए देखा जा सकता है। हर दो सिलसिलेवार तस्वीरों के खींचे जाने के बीच (आखिरी तस्वीर को छोड़कर) करीब आधे सेकण्ड का अन्तराल है। इन्हें आँखों के सामने तेजी-से (कम-से-कम 24 फ्रेम प्रति सेकण्ड की रफ्तार से) एक-के-बाद-एक गुजारने से घोड़ी के दौड़ने का आभास होता है। यही सिद्धान्त फिल्म-मेकिंग में 'फ्रेम रेट' की बुनियाद है। और इसलिए इस ऐतिहासिक तस्वीर शृंखला ने मोशन पिक्चर (चलचित्र) के बीज बोने में एक अहम भूमिका निभाई।

(थोड़ी-थोड़ी बदलती हुई) एक-के-बाद-एक आएँ।

इसी को आगे बढ़ाते हुए यह भी कहा गया कि यदि आँख के सामने एक के बाद कई वस्तुएँ, जो एक-दूसरे से क्रमिक रूप से भिन्न हों, थोड़े-थोड़े समय अन्तराल पर प्रकट हों तो रेटिना पर बनी उनकी छवियाँ आपस में जुड़ जाती हैं और ऐसा लगता है कि एक ही वस्तु धीरे-धीरे बदलती जा रही है।

दरअसल, चलचित्र के सवाल को दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है - पहला कि छवि निरन्तर क्यों दिखती है (यानी हमें एक-के-बाद-एक स्थिर

चित्र क्यों नज़र नहीं आते), और दूसरा कि वह चलती-फिरती क्यों दिखती है (वे एक-के-बाद-एक स्थिर चित्रों की एक शृंखला क्यों नहीं नज़र आती)?

इस सन्दर्भ में एक प्रयोग यह किया गया था कि यदि व्यक्ति को दो पास-पास रखे प्रकाश बिन्दु एक-के-बाद-एक लगातार जलते-बुझते दिखाए जाएँ तो उसे लगता है कि ये दो बिन्दु नहीं हैं, बल्कि एक ही बिन्दु है जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर आ-जा रहा है। कारण यह बताया गया कि जब एक बिन्दु को प्रकाशित किया जाता है तो उसका

प्रतिबिम्ब रेटिना पर बनता है। जब इस बिन्दु को अप्रकाशित करके पास के बिन्दु को प्रकाशित किया जाता है तो आँख पर पहले बिन्दु का प्रतिबिम्ब मिटा नहीं होता है और तभी दूसरा बिन्दु प्रकट हो जाता है। इसलिए दिमाग उसे पहले बिन्दु की गति समझ लेता है। इस व्याख्या की मूल बात यह थी कि दोनों बिन्दुओं के प्रकट होने के बीच, समय का अन्तराल एक सीमा से कम होगा, तभी दो प्रतिबिम्ब आपस में घुल-मिल जाएँगे। यदि अन्तराल इससे अधिक हुआ तो वे दोनों बिन्दु अलग-अलग ही दिखाई देंगे। इसे फिलकर (यानी क्रमिक रूप से जल-बुझ) कहते हैं। शोधकर्ताओं ने कहा कि फिलकर तेज़ रफ्तार से हो, तो वह नज़र नहीं आती और निरन्तरता का एहसास पैदा करती है। इसके अलावा, इस प्रभाव के लिए एक बात और ज़रूरी है - उन दो बिन्दुओं के बीच की दूरी। यदि दूरी बहुत कम हुई तो वह एक ही बिन्दु जलता-बुझता दिखेगा और दूरी बहुत अधिक हुई तो दो बिन्दु अलग-अलग ही दिखते रहेंगे। एक ही बिन्दु को चलते-फिरते देखने के लिए ज़रूरी है कि वे दो बिन्दु आँखों पर जो कोण बनाएँ, वह 1 डिग्री का लगभग साठवाँ अंश हो। पहले वाले मामले को फिलकर फ्यूज़न यानी जलने-बुझने का घुल-मिल जाना कहते हैं।

इस व्याख्या में भी माना गया था

कि जो कुछ भी हो रहा है, वह रेटिना के स्तर पर हो रहा है। और कुछ हद तक पर्सिस्टेंस ऑफ विज़न की बात भी शामिल थी। लेकिन एक बात साफ थी कि बिन्दुओं के जलने-बुझने के बीच का अन्तराल बहुत महत्व रखता है। आगे के अनुसंधान ने स्पष्ट किया कि यह घटना रेटिना के स्तर पर नहीं बल्कि मस्तिष्क के स्तर पर होती है।

लेकिन कुछ शोधकर्ता यह समझने के प्रयास में लगे थे कि वास्तविक गति और आभासी गति के बीच कोई अन्तर है भी या नहीं। इसे समझना बहुत मुश्किल है क्योंकि देखने की क्रिया बहुत ज़्यादा पेचीदा है। रेटिना पर प्रतिबिम्ब बनता है, फिर रेटिना की तंत्रिकाएँ (प्रकाशीय तंत्रिकाएँ) इस सूचना को मस्तिष्क को पहुँचाती हैं, और अन्त में मस्तिष्क इन सूचनाओं की व्याख्या करता है। फिलहाल, वैज्ञानिक मानते हैं कि आभासी गति को समझने का काम मस्तिष्क में होता है। लेकिन फिलहाल इसकी क्रियाविधि निश्चित तौर पर पता नहीं है।

कुछ शोधकर्ताओं का मत है कि दरअसल आभासी और वास्तविक गति की अनुभूति के बीच कोई अन्तर नहीं है। उनके अनुसार मस्तिष्क को जब कोई तंत्रिका सन्देश मिलता है तो वह उसकी कोई अर्थपूर्ण व्याख्या करना चाहता है। किसी चीज़ के बारे में यदि सन्देश यह मिले कि वह

थोड़ी-थोड़ी बदल रही है, तो मस्तिष्क दो प्रतिबिम्बों के बीच की अवस्था की कल्पना करके उस अन्तराल को भर देता है। ज़रूरत सिर्फ इतनी होती है कि वे एक निश्चित गति से प्रकट हों। एक-एक स्थिर चित्र (यानी फ्रेम) के सामने आने की रफ्तार बहुत महत्व रखती है। प्रति सेकण्ड 16-24 चित्र ठीक माने जाते हैं। वैसे यह रफ्तार काफी हद तक टेक्नॉलॉजी पर निर्भर होती है। यदि रफ्तार बहुत अधिक रहे तो कोई फायदा नहीं होता क्योंकि मस्तिष्क इनमें से कई फ्रेम्स को नज़रअन्दाज़ कर देता है।

कहते हैं कि जब हम फिल्म देखते हैं तो जितना समय पर्दे पर तस्वीर होती है, लगभग उतना ही समय पर्दा खाली रहता है। मस्तिष्क इस खाली

पर्दे में अपनी कल्पना शक्ति से चित्र भर देता है। इसलिए मुख्य बात यह है कि मस्तिष्क को किसी तरह राज़ी किया जाए कि वह पर्दे के खालीपन को नज़रअन्दाज़ कर दे। शायद पर्सिस्टेंस ऑफ विज़न की भूमिका इस खालीपन को भरने में है, बस। एक रोचक बात के साथ समापन ठीक रहेगा - जब आप फ्लोरसेंट बल्ब या एलईडी बल्ब की रोशनी में बैठते हैं तो ये एक सेकण्ड में लगभग 60 बार बन्द-चालू होते हैं क्योंकि एसी करंट की दिशा बदलती रहती है। तो काफी समय ये कोई रोशनी नहीं देते किन्तु आपका दिमाग उन अँधेरी अवधियों को भर देता है और आपको लगातार रोशनी का एहसास होता है।

**सुशील जोशी:** एकलव्य द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

### इस बार का सवाल

**सवाल:** विद्यार्थी एक टेबल को 10 बार नापें तो उनकी नाप बराबर क्यों नहीं आती है?

- कक्षा 6, अनांद विहार मॉडल हाई स्कूल, बाबई,

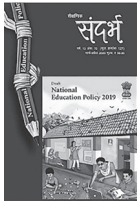
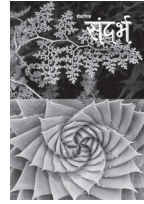
(होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम) होशंगाबाद, म.प्र., 1999

इस सवाल के बारे में आप क्या सोचते हैं, आपका क्या अनुमान है, क्या होता होगा? इस सवाल को लेकर आप जो कुछ भी सोचते हैं, सही-गलत की परवाह किए बिना लिखकर हमें भेज दीजिए। सवाल का जवाब देने वाले पाठकों को **संदर्भ की तीन साल की सदस्यता उपहार स्वरूप दी जाएगी।**



# हर बाउंड वॉल्यूम में सिमटे हैं सात रंग

भौतिकी, रसायन, गणित,  
वनस्पति विज्ञान, प्राणि विज्ञान,  
इतिहास, भूगोल, राजनीति शास्त्र,  
बच्चों-शिक्षकों के साथ अनुभव,  
पुस्तक समीक्षा, पुस्तक अंश,  
इंटरव्यू, आत्मकथा, जीवनी,  
कहानी, भाषा शिक्षण,  
शिक्षा शास्त्र



संदर्भ में अब तक प्रकाशित सामग्री 22 बाउंड वॉल्यूम में उपलब्ध है।  
हरेक बाउंड वॉल्यूम का मूल्य 300 रुपए।

**अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क कीजिए**

**पिटारा, एकलव्य**

जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी,

भोपाल, म.प्र. पिन 462026

फोन: 0755 - 2977770, 2977771

ई-मेल: [pitara@eklavya.in](mailto:pitara@eklavya.in), [www.pitarakart.in](http://www.pitarakart.in)

# रंगीन द्रव पदार्थों की पहेली

मेघा चौगुले और अदिती मुरलीधर



**क्या** आपने कभी द्रव पदार्थों को एक-दूसरे के ऊपर रखने की कोशिश की है? असम्भव लगता है? क्या कभी बारिश के मौसम में, गड्ढों में इकट्ठा हुए पानी पर मोटरगाड़ी का तेल तैरता हुआ देखा है? या फिर, तेल रिसाव के कारण, समुद्र के पानी पर तेल की परत देखी है? खाना पकाते समय तेल हमेशा शोरबा/ग्रेवी के ऊपर तैरने लगता है। ये सारे वे आम उदाहरण हैं जिन्हें हम रोज़मर्रा के जीवन में देखते हैं। लेकिन फिर भी, द्रव पदार्थों को एक-दूसरे के ऊपर रखने का विचार थोड़ा अजीब लगता है।

## घनत्व की अवधारणा से परिचय

नीचे दी गई गतिविधि, छात्रों को घनत्व की अवधारणा से परिचित कराने का एक मज़ेदार तरीका है। इस गतिविधि का पहला भाग हमने बच्चों के साथ आजमाकर देखा हुआ है। और इसी के आधार पर, गतिविधि को अधिक सार्थक बनाने के लिए, हम यहाँ गतिविधि का विस्तार प्रस्तावित कर रहे हैं। आप इसे अपने छात्रों के साथ आजमा सकते हैं और अपने अनुभव हमारे साथ साझा कर सकते हैं। हमें आपकी प्रतिक्रिया का इन्तज़ार रहेगा।

**उद्देश्य:** द्रव पदार्थों के आधार पर घनत्व की अवधारणा का परिचय देना।

### आवश्यक सामग्री:

- परीक्षण नलियाँ यानी टेस्ट ट्यूब
- टेस्ट ट्यूब स्टैंड
- पिपेट या ड्रॉपर
- शहद (पीला)
- डिशवॉशिंग लिक्विड (हरा)
- पानी (नीले रंग के साथ मिश्रित)
- बालों में लगाने वाला तेल (लाल; आप बाज़ार में उपलब्ध अन्य रंगों के तेल का भी उपयोग कर सकते हैं)
- प्रयोगशाला में इस्तेमाल किया जाने वाला तराजू

हम यह मानकर चल रहे हैं कि इस गतिविधि के लिए चुने गए चार द्रव पदार्थों से अधिकांश छात्र परिचित होंगे, क्योंकि ये रोज़मर्रा में उपयोग किए जाने वाले द्रव पदार्थ हैं। सभी द्रव पदार्थ अधिकांश घरों में आम तौर पर मिल सकते हैं। उन्हें इस प्रकार चुना गया है कि प्रत्येक द्रव पदार्थ का रंग अलग हो। चित्र-1 (refer inside back cover) के अनुसार 6 परीक्षण नलियाँ (क्षमता 10-20 मि.ली.) तैयार करें।

**छात्रों के लिए प्रारम्भिक प्रश्न:** दी गई परीक्षण नलियों को ध्यान से देखें। परीक्षण नलियों में कितने प्रकार के

द्रव पदार्थ मौजूद हैं? क्या आप सभी द्रव पदार्थों के नाम बता सकते हैं?

**अनुमान लगाइए:** यदि ये सभी द्रव पदार्थ एक परीक्षण नली में डाल दिए जाएँ, तो क्या होगा? यदि हम समान आयतन में, या यूँ कहें कि समान मिलीलीटर के अनुसार, द्रव पदार्थ मिला दें, तो उनका क्रम क्या होगा?

**गतिविधि और निरीक्षण:** छात्रों को परीक्षण नली में पिपेट या ड्रॉपर की मदद से समान आयतन या समान मिलीलीटर में द्रव पदार्थ डालने के लिए कहें। साथ ही, छात्रों को सजग कीजिए की उन्हें बड़े आराम-से परीक्षण नली में द्रव डालना है, और परीक्षण नली को जोर-से नहीं हिलाना है। ये परीक्षण नलियाँ तैयार करने में आप छात्रों की मदद भी कर सकते हैं। इसके बाद छात्रों से पूछिए कि इसका परिणाम उनके अनुमान के साथ मेल खाता है या नहीं।

**टिप्पणी:** यदि आप यह गतिविधि कम उम्र के छात्रों के साथ कर रहे हैं, तो आप उन्हें चित्र-2 (refer inside back cover) के अनुसार विभिन्न विकल्पों का चार्ट दे सकते हैं। आप छात्रों को हर विकल्प की सम्भावना के बारे में चर्चा करने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं। जैसे कि, यदि कुछ छात्र 'क' विकल्प को गलत कह रहे हैं तो उन्हें यह समझाने के लिए कहें कि उन्हें वह विकल्प गलत क्यों लगता है। साथ ही, उन्हें इस विषय पर, कक्षा में अन्य छात्रों के साथ बातचीत



### बॉक्स-1: द्रव पदार्थों को एक-दूसरे पर रखना कैसे मुमकिन हो पा रहा है?

जब किसी द्रव पदार्थ के अपने अणुओं के बीच का आकर्षण बल, अन्य द्रव पदार्थ के अणुओं के साथ के आकर्षण बल से अधिक होता है, तब वे द्रव पदार्थ एक-दूसरे में नहीं घुलते हैं। इस गतिविधि में लिए गए द्रव भी आसानी-से एक-दूसरे में नहीं घुलते हैं और इसलिए हम उनको, एक तरह से, एक-दूसरे पर रख पाते हैं।

करने के लिए प्रोत्साहित करें।  
ज्यादातर छात्रों को यह एक मजेदार खेल लगेगा।

### गतिविधि का विस्तार

**अनुमान लगाइए:** यदि एक परीक्षण नली में इन चार द्रवों का समान द्रव्यमान (ग्राम की इकाई में) लिया जाए, तो द्रव पदार्थों का क्रम क्या होगा?

**टिप्पणी:** यदि आप यह गतिविधि कम उम्र के छात्रों के साथ कर रहे हैं, तो आप उन्हें चित्र-3 के अनुसार विभिन्न विकल्पों का चार्ट दे सकते हैं।

**गतिविधि और निरीक्षण:** छात्रों को परीक्षण नली में समान द्रव्यमान या प्रत्येक द्रव पदार्थ को समान ग्राम की मात्रा में लेने के लिए कहिए। अब छात्रों को यह जाँचने के लिए कहें कि उन्होंने द्रवों के क्रम का जैसा अनुमान लगाया था, असल क्रम वैसा है या नहीं।

छात्रों से समान आयतन और समान द्रव्यमान वाली परीक्षण नलियों का निरीक्षण करने के लिए कहें (चित्र-4)। आकृति की पहली परीक्षण

नली में सभी चार द्रव पदार्थों का आयतन समान और द्रव्यमान भिन्न है। वहीं दूसरी परीक्षण नली में द्रव्यमान समान है और आयतन भिन्न है। आकृति में हम स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि द्रव पदार्थ द्वारा घेरी हुई जगह (आयतन) या उसमें मौजूद द्रव की मात्रा (द्रव्यमान), स्वतंत्र रूप से द्रव पदार्थों का क्रम निर्धारित नहीं करते हैं।

तो आइए देखते हैं कि अगर हम हर द्रव के द्रव्यमान को उसके आयतन से विभाजित करें तो मिलने वाली संख्या का पदार्थों के क्रम के साथ कोई सम्बन्ध है या नहीं। वैसे द्रव्यमान और आयतन के अनुपात (द्रव्यमान ÷ आयतन) को विज्ञान की भाषा में घनत्व कहते हैं। यह इकाई आयतन में निहित द्रव्यमान को दर्शाती है। उदाहरण के लिए, तेल का घनत्व 0.9 ग्राम/मि.ली. है, मतलब 1 मि.ली. में 0.9 ग्राम तेल आएगा। वहीं अगर शहद का घनत्व 1.4 ग्राम/मि.ली. है, तो इसका मतलब हुआ 1 मि.ली. में 1.4 ग्राम शहद आएगा। इसलिए द्रव मूल रूप में कितना

## बॉक्स-2

किसी भी पदार्थ का घनत्व (दिए गए दबाव और तापमान के लिए) समान रहता है, फिर चाहे आप उसे किसी भी मात्रा में लें। जब हम अमिश्रणीय द्रव पदार्थ मिलाते हैं, तब कम घनत्व वाला द्रव तैरता है और उच्च घनत्व वाला द्रव डूब जाता है। इस प्रकार द्रव पदार्थों का क्रम उनके घनत्व पर निर्भर करता है।

कसकर पैक यानी सघन है, उसका नाप घनत्व है।

अब आप छात्रों को चित्र-4 में दी गई आकृति दिखा सकते हैं या उनके द्वारा तैयार की गई परीक्षण नलियों के लिए द्रव्यमान और आयतन को मापकर, उन्हें बता सकते हैं। इसके बाद, आप छात्रों को परीक्षण नली (I) और (II) में प्रत्येक द्रव पदार्थ का घनत्व पता लगाने के लिए कहें। (छात्रों को किसी भी द्रव का घनत्व निकालने के लिए, द्रव्यमान को उसके आयतन से विभाजित करने को कहें।) यह करते वक्त छात्र पाएँगे कि विभिन्न द्रव पदार्थों का घनत्व

अलग-अलग है। हालाँकि, समान द्रवों का घनत्व समान है (जैसे कि शहद का घनत्व दोनों परीक्षण नलियों में 1.4 ग्राम/मि.ली. है)। घनत्व के आँकड़ों को ध्यान में रखते हुए, छात्रों से परीक्षण नली (I) और (II) का निरीक्षण करने के लिए कहें। वे पाएँगे कि द्रव पदार्थ, दोनों परीक्षण नलियों में, ऊपर से नीचे की ओर घनत्व के बढ़ते क्रम में हैं। इसका मतलब घनत्व द्रव पदार्थों का क्रम निर्धारित करता है।

## टिप्पणी

यहाँ हमारा उद्देश्य छात्रों से समान आयतन और समान द्रव्यमान



वाली परीक्षण नलियों का अवलोकन करवाना है। यदि गतिविधि कक्षा में की जाती है, तो छात्रों को दो समूहों में विभाजित किया जा सकता है। एक समूह समान आयतन वाली परीक्षण नली तैयार करेगा, तो दूसरा समूह समान द्रव्यमान वाली परीक्षण नली तैयार करेगा। यहाँ हर छात्र को दो-दो परीक्षण नलियाँ तैयार करने की आवश्यकता नहीं है। परीक्षण नलियाँ तैयार करते वक्त अगर बच्चों को कोई दिक्कत आ रही है

तो आप बच्चों की सहायता कर सकते हैं।

अगर आपके पास परीक्षण नलियाँ नहीं हैं तो आप रोज़मर्रा के घरेलू पारदर्शी सामान, जैसे - सैनिटाइज़र की छोटी बोतलें, नेल-पॉलिश रिमूवर की शीशियाँ, काँच के गिलास इत्यादि का भी इस्तेमाल कर सकते हैं। पर ध्यान रखें कि बोतल के किनारे सीधे होने चाहिए, तिरछे नहीं। साथ ही, वे पारदर्शी हों ताकि छात्र अवलोकन कर पाएँ।

---

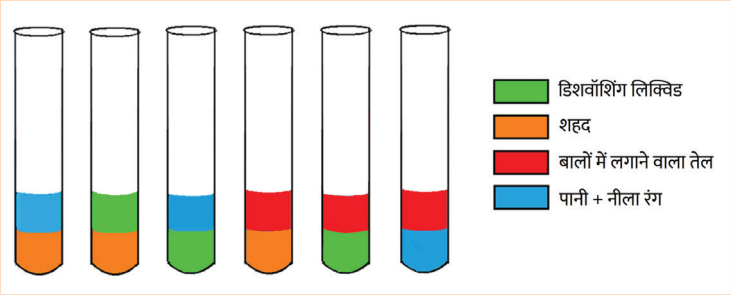
**मेघा चौगुले व अदिती मुरलीधर:** मेघा और अदिती होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र, टी.आई.एफ.आर., मुम्बई में काम करती हैं। उनसे [meghac@hbse.tifr.res.in](mailto:meghac@hbse.tifr.res.in) पर सम्पर्क किया जा सकता है।

**आभार:** हम डॉ. सुग्रा चुनावाला, डॉ. अनिशा मल्होत्रा दळवी और मिहिर पाठक की प्रतिक्रियाओं के लिए आभारी हैं और भारत सरकार के परमाणु ऊर्जा विभाग द्वारा प्रोजेक्ट समर्थन के लिए भी आभार प्रकट करते हैं।

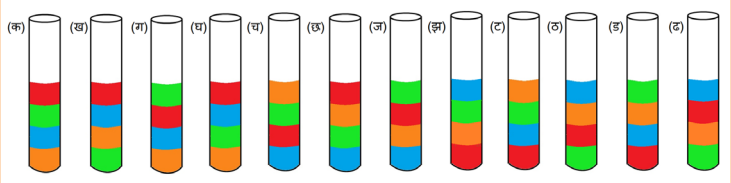
#### सन्दर्भ:

- <https://www.scientificamerican.com/article/stacking-liquids/>
- <https://extension.purdue.edu/4h/Documents/Volunteer%20Resources/Science%20Made%20Easy/7Layer%20Density%20Column.pdf>
- <https://www.ccsdut.org/site/handlers/filedownload.ashx?moduleinstanceid=617&dataid=3456&FileName=s2liquid%20layers%20worksheet%20reg.pdf>
- <https://www.exploratorium.edu/snacks/klutz-proof-density-column>
- <https://www.homesciencetools.com/a/liquid-density-project>
- Adebayo, F. & Olufunke, B. T. (2015). Generative and Predict-Observe-Explain Instructional Strategies: Towards Enhancing Basic Science Practical Skills of Lower Primary School Pupils. *International Journal of Elementary Education*, 4(4), 86-92

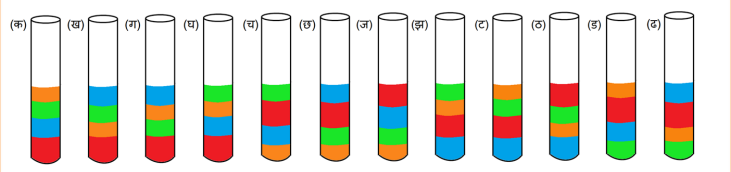
चित्र-1: चार प्रकार के द्रव पदार्थों के छः संयोजन



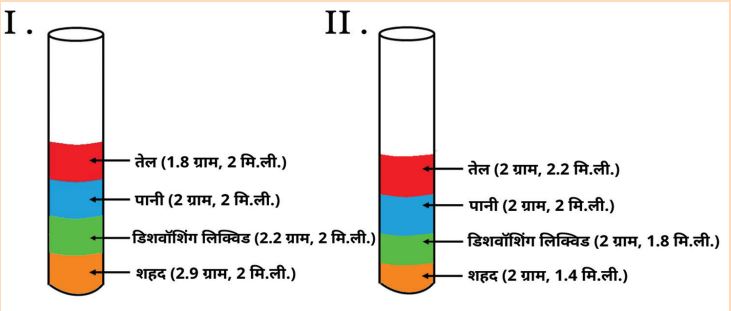
चित्र-2: समान आयतन के आधार पर द्रव पदार्थों के विभिन्न संयोजन विकल्प



चित्र-3: समान द्रव्यमान के आधार पर द्रव पदार्थों के विभिन्न संयोजन विकल्प



चित्र-4: समान आयतन (I) और समान द्रव्यमान (II) के आधार पर द्रव पदार्थों के संयोजनों की तुलना





प्रकाशक, मुद्रक, राजेश खिंदरी की ओर से निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन, जमनालाल बजाज परिसर,  
जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (म.प्र.) द्वारा एकलव्य से प्रकाशित तथा  
भण्डारी प्रेस, ई-3/12, अरंरा कॉलोनी, भोपाल - 462 016 (म.प्र.) से मुद्रित, सम्पादक: राजेश खिंदरी